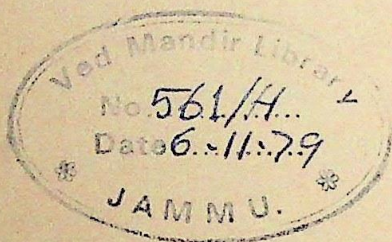
तुकाराम गाथा-सार





तुकाराम गाथासार

महाराष्ट्र के महान् सत के चुने हुए अभंगों का
हिन्दी रूपान्तर

•

संग्रहकर्त्ता-अनुवादक
नारायणप्रसाद जैन

•

सम्पादक
श्रीपाद जोशी

•

१९७८

सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

प्रकाशक
यशपाल जैन
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९७८
मूल्य : 2.50

मुद्रक : स्वतंत्र प्रेस प्रिंटिंग वर्क्स, दिल्ली-६

'विवेक और साधना' के समर्थ लेखक

परमपूज्य श्री केदारनाथजी

को

सविनय

—नारायणप्रसाद

प्रकाशकीय

संतों की वाणी प्रत्येक व्यक्ति के लिए बड़ी उपयोगी होती है। दुनिया के मायाजाल में जब आदमी अशांत होकर भटकता है तो संतों के जीवन-चरित और उनके वचन उसे सही रास्ते के दर्शन कराते हैं। हमें हर्ष है कि संतों की पावन वाणी को पाठकों के लिए सुलभ कराने में 'मण्डल' अपना यत्किंचित योग देता रहा है। संत-वाणी, बुद्ध-वाणी, महावीर-वाणी, संत-सुधा-सार आदि इसी दिशा के प्रकाशन हैं। इसी श्रृंखला में अब महाराष्ट्र के महान् संत तुकाराम के चुने हुए विचार-रत्नों की यह मणिका पाठकों के हाथों में पहुंच रही है। पाठकों की सुविधा के लिए पुस्तक की सामग्री को विभिन्न वर्गों में विभाजित कर दिया गया है।

हम चाहते थे कि तुकाराम के मूल अभंग भी अनुवाद के साथ में देते; लेकिन उससे पुस्तक का आकार बहुत बढ़ जाता और मूल्य की दृष्टि से पुस्तक सामान्य स्थिति के पाठकों के लिए दुर्लभ हो जाती। आकार कम करने की विवशता के कारण न केवल मूल अभंगों को ही छोड़ा गया है, अपितु कहीं-कहीं अभंगों के अंश-मात्र ही दिये गए हैं।

हमें विश्वास है कि पाठक इस पुस्तक के वचनों का पठन-पाठन ही नहीं, मनन-चिन्तन भी करेंगे और अपने दैनिक स्वाध्याय में इस पुस्तक का उपयोग करेंगे।

—मंत्री

दो शब्द

संत तुकाराम उन महात्माओं में से थे, जो भूले-भटकों को रास्ता दिखाने के लिए पैदा होते हैं। उनकी सरल-सुहानी दिव्य वाणी हर मराठे की जबान पर है। देव-पूजा या तीर्थ-यात्रा के अवसर पर किसी भी अन्य संत के नाम का ऐसा यशगान नहीं होता, जैसा तुकाराम के नाम का।

सम्पत्ति को वह आध्यात्मिक मार्ग की बाधा और आदमी को आदमी से अलग करनेवाली बाड़ समझते थे। आत्मानुभूति के बाद उन्होंने पहला काम यह किया कि अपन कुटुम्ब के अपने हिस्से की सम्पत्ति के सारे अधिकार-पत्रों को नदी में बहा दिया। उसके बाद यद्यपि वह जीविकोपार्जन करते रहे, तथापि उन्होंने अपने को पूर्णतया भगवद्-कृपा पर छोड़ दिया।

शिवाजी की भेंट की हुई धन-सम्पत्ति को उन्होंने ठुकरा दिया। वह जो उपदेश देते थे उसीके अनुसार आचरण भी करते थे। यह कहना ज्यादा सही होगा कि उनके कार्य ही उपदेश का काम करते थे। वे भेद-भाव को न माननेवाले, सब जीवों को समान समझनेवाले और आत्म-प्रेम को विश्व-प्रेम में मिला देनेवाले अद्वैत की प्रति-मूर्त्ति थे। उनके गीत उनके प्रशान्त जीवन के अनुरूप थे। मराठों ने राजनैतिक अनुशासन शिवाजी से सीखा तो आध्यात्मिक अनुशासन तुकाराम से। वह जन-साधारण में से एक थे और सर्व-साधारण की ही भाषा में बोलते थे।

उनके सच्चे जीवन की झांकी उनके अभंगों में मिलती है। भगवत्-स्फूर्ति-युक्त अवस्था में चार करोड़ अभंग उनके मुंह से निकले, जिनमें से सिर्फ़ साढ़े चार हज़ार मिलते हैं। वे कहते हैं, "मुझे स्वप्न में सद्गुरु ने उपदेश देकर कृतार्थ किया। उसके बाद तुरन्त ही कविता की स्फूर्ति हो आई।" उनके अभंग वेद-मंत्रों के समान हैं। महाराष्ट्र में वे 'अध्यात्म-मंदिर के कलश' माने जाते हैं।

नारायणप्रसाद जैन

विषय-सूची

तुकाराम
गाथा-सार

: १ :

आत्म-परिचय

मैं शूद्रवंश में पैदा हुआ, इसीलिए मुझमें दम्भ नहीं रहा। हे भगवान्, तू ही अब मेरा मां-बाप है। वेद-पठन का अधिकार मुझे नहीं है। मैं सब प्रकार से दीन और जातिहीन हूं।

अच्छा हुआ हे भगवान, कि तूने मुझे किसान बनाया, वरना मैं घमंड से भर गया होता। हे ईश्वर, तूने अच्छा किया, क्योंकि अब तुकाराम नाचता है और तेरे चरण छूता है। अगर मुझमें कुछ विद्या होती तो बड़े झंझट में फंस जाता। तब मैं संतों की सेवा न करता और मुफ़्त में मर जाता। अगर मैं मामूली किसान न होता तो मुझमें दुनिया भर का घमंड आ जाता और यमराज के मार्ग से चलने लगता। बड़प्पन के अभिमान से आदमी नरक में चला जाता है।

स्वयं पांडुरंग भगवान के साथ स्वप्न में आकर नामदेव महाराज ने मुझे जगाया। उन्होंने मुझसे कहा, "तुम कविता करो, व्यर्थ की बातें मत करो। मैंने सौ करोड़ अभंग लिखने का संकल्प किया था; उनमें से जितने बाक़ी हैं, उतने तुम लिख डालो।"

मेरा द्रव्य और धान्य लोगों के घर-घर में भरा हुआ है, और मैं अपना पेट भिक्षा से भरता हूँ। प्रभु ने मेरी सब विषयों की वासना नष्ट कर डाली है और मेरे कुटुम्ब की सेवा वही करता है।

इस मृत्यु-लोक में हरि के नाम को छोड़कर मुझे और कुछ प्रिय नहीं लगता। मेरे चित्त को सारे प्रपंच से घृणा हो गई है। सोना, रुपया, हमें मिट्टी के समान हैं, माणिक पत्थर की तरह हैं। सारे जग को भुलानेवाली स्त्रियों से मुझे विरक्ति हो गई है।

जब मुझे भान भी नहीं था, संसार की चिन्ता नहीं थी, उस समय पिता चल बसे। हे प्रभो, तेरा मेरा ही राज्य है, दूसरे का काम नहीं। स्त्री मर गई, वह छूट गई। देव ने माया छुड़ा दी। लड़के मर गए, अच्छा हुआ। देव ने माया से मुक्त कर दिया। मेरे देखते मां मर गई; चिन्ता से मुक्त हो गया।

संसार की वार्ता मुझसे सहन नहीं होती और किसीको यह कहना कि 'यह मेरा है' मुझे नहीं सुहाता। देह को सुख देनेवाले उपचारों से मुझे सुख नहीं होता; उनका आदर अथवा भोग विषवत् अथवा बन्धनवत् लगता है। प्रतिष्ठा या गौरव मिलने पर मेरा जी बहुत ही अकुलाता है।

मैं जो कुछ बोलता हूं, सन्तों का उच्छिष्ट है। मैं जो कुछ बोलता हूं, देव ही मुझसे बुलवाता है। उसका गुह्य अर्थ-भाव क्या है, सो भी वही जानता है।

कोई कहेगा कि यह तुकाराम कविता करता है; पर कविता की वाणी मेरी अपनी नहीं है। मेरी कविता का प्रकार युक्ति का नहीं है। मुझसे विश्वम्भर ही बुलवाता है। मैं पामर अर्थ-भेद क्या जानूं? जो गोविन्द बुलवाता है, सो बोलता हूं। यहां 'मैं' नाम की कोई चीज़ नहीं है, सब-कुछ स्वामी की ही सत्ता है।

परमार्थ-विरोधी वचन मुझसे सहन नहीं होते। उन्हें सुनकर मेरा मन बड़ा दुःखी होता है। इसलिए मुझे किसीकी संगति सहन नहीं होती। एकांतवास ही प्रिय लगता है। देह की भावना और वासना का संग मुझे पसंद नहीं

आता। उससे जी ऊब गया है। आशा-मोह के जाल में पड़ने से दुःख बढ़ता है और देव-आराधन में अन्तर पड़ जाता है।

मैं मान और दम्भ को थूककर कीर्तन करता हूँ। मैं देह से उदास हो गया हूं। एक देव के सिवा मुझे कोई चाह नहीं। अर्थ को अनर्थ सरीखा मानकर दूर रख दिया। मैं सब उपाधियों से अलग रहकर पवित्र हुआ हूं।

संसार में जो कुछ है, ब्रह्मरूप है, ऐसे अनुभव का मैं ऐश्वर्य भोगता हूं। मेरी कामना देव को ही भोगती है और देव के आलिंगन की अभिलाषा रखकर चरणों का चुम्बन लेती है। शांति के संयोग से त्रिविध ताप नष्ट कर दिया। अब भेद-बुद्धि उत्पन्न होना पाप है। जिधर देखता हूँ, उधर एक हरि का रूप ही दीखता है। इसलिए अपने और पराये का भेद नष्ट हो गया।

क्षण-क्षण साक्षी होकर मैं अपनी अन्तर्मुख-वृत्ति को संभालता हूं ताकि प्रभु चरणों का मुझसे संबंध न टूटे। कितने ही भक्तों को अन्तराय आया, इसके भय से मैं जाग्रत हो गया।

हे देव, मैं तुम सरीखा शिव भी नहीं हूं और अपने सरीखा जीव भी नहीं हूँ, यानी इन दोनों भावों से अलग हूं।

एक भगवान की ही पहचान है, दूसरी भावनाएं नष्ट हो गईं। तुम्हारे अलावा अन्य नाम-रूपात्मक जगत मेरे लिए नष्ट हो गया।

मैं हाथ में विवेक की लाठी लेकर देह के पीछे लग गया। जिस तरह श्मशान में मुर्दे ुकते हैं, उसी तरह मैंने उसे अपने ब्रह्मतेज से जला डाला।

हम श्री विट्ठल के प्रतापी वीर हैं। कलिकाल भी आये तो उसका सिर फोड़ देंगे। हम हमेशा हरिनाम-कीर्तन करते हैं। इस सुख के लिए हम बारम्बार जन्म लेंगे। हम मुक्ति की आशा नहीं करते।

जिससे मेरे चित्त में विक्षेप पड़े, ऐसी संगति में नहीं करूंगा। विठ्ठल के अतिरिक्त जो शब्द हैं, उन्हें मैं कानों से नहीं सुनूंगा। मैं जो कुछ बोलता हूं, दूसरों के समाधान के लिए बोलता हूं, लेकिन मेरा चित्त कहीं भी गुंथा हुआ नहीं है। जिनके चित्त में भगवत्प्रेम है, वे मुझे प्राणों से अधिक प्रिय हैं। देव और सन्त ही मेरे हित को जानते हैं। इसलिए दूसरों के बोलने की ओर मैं ध्यान नहीं देता।

देव के पास मुझे किस चीज की कमी है? फिर मैं किसी और से क्या मांगूं? दूसरे की शंसा न सुननेवाला हूँ न करनेवाला। सिवा भगवान के मुझे किसी चीज की इच्छा नहीं है। मोक्ष की न मैं आशा रखनेवाला हूं, न उसके लिए प्रयास ही करनेवाला हूँ; न मैं संसार के आवागमन से डरता हूं। मेरी आत्मा को सिवा परमात्मा के कुछ नहीं चाहिए।

पतिव्रता अपने पति के सिवा किसीकी प्रशंसा नहीं जानती। वह सर्व-भाव से मन में पति का ही ध्यान करती है। वैसे ही मेरा मन अनन्य हो गया है। सिवा भगवान के मुझे कुछ भी प्रिय नहीं है। सूर्य-विकासिनी कमलिनी चन्द्र के प्रकाश से नहीं खिलती। कोकिला वसन्त में ही गाती है। बालक माँ के आगे ही नाचता है। दूसरों के बोल उसे प्रिय नहीं लगते।

मैंने काम-क्रोध भगवान के समर्पण करके उसके चरणों का प्रेम धारण किया है। मेरा देहभाव चला गया। अब पीछे फिरकर कौन देखे? ऋद्धि-सिद्धियों के सुखों को लात मार चका, तो फिर इस प्राकृत संसार-सुख को कौन मानता है? मैं विठोबा का दास हूं। मैंने ब्रह्मांड को ग्रास बनाकर रख दिया है।

परमेश्वर हमारे हाथ लग गया है, सलिए हम चिन्तारहित हैं। हमारा मन कहीं नहीं दौड़ता। सभी इंद्रियां संतुष्ट हैं। कामवासना का पूर्णतया त्याग करके मैं विठोबा का नाम लेता हूँ।

देव की बातें मीठी लगती हैं, यह मेरा प्रत्यक्ष अनुभव है। मुझे सुख मिला है। उस सुख का वाणी से वर्णन नहीं हो सकता। अब मुझमें और देव में अन्तर नहीं दीखता। इस सुख को बनाये रखने का जी-जान से यत्न करूंगा।

प्रभु मेरी मां हैं; वह मेरी भूख-प्यास बिना कहे जानती है।

मैं किसीके अवगुण नहीं देखता। न किसीको पापी, पवित्र या विद्वान गिनता हूं। सब तेरे ही रूप हैं। इसलिए सबका भावसहित वन्दन करूंगा और सेवा करूंगा। मुझे केवल भक्ति की अभिलाषा है। तेरी खातिर मैं विष को अमृत मानकर पीऊंगा।

मुझे तेरे ज्ञान की इच्छा नहीं है; मुझे तो तेरा नाम लेना ही मीठा लगता है। हे माँ विठाई, मैंने अपना सारा भार तुझपर डाल दिया है। भक्ति या वैराग्य मेरी कुछ भी समझ में नहीं आता। मैं निर्लज्ज होकर तेरे सामने नाचूं, इसे छोड़ और कोई भाव नहीं है मेरे मन में।

हे वैष्णवजन, मैं तोतली वाणी से 'हरि-हरि' बोलता हूं, इसके अलावा मैं भिखारी और कुछ नहीं जानता। तुम भगवान के दास हो; मैं तुम्हारा उच्छिष्ट प्रसाद पाने की आशा करता हूं।

श्री हरिचरण कमलों के समान त्रिलोक में सुख नहीं है, इसीलिए मेरा मन उनमें स्थिर हो गया है। उन्हें मैंने अपनी आत्मा में धारण किया है और उनके नाम की इकहरी माला गले में डाल ली है। इससे मैं त्रिविध तापों से मुक्त होकर शांति पा गया हूं। पाण्डुरंग ने मेरी सब इच्छाएँ पूर्ण कर दीं; मुझे सब सुख मिल गया!

मेरा संपूर्ण भार विट्ठल ने ले लिया है। अब अन्दर-बाहर उसीका रूप भरा हुआ है।

मुझे सब सुख विठोबा के चरणों से प्राप्त होते हैं, इसलिए और किसीकी इच्छा मेरे चित्त में नहीं है। एक भगवान के सिवा मेरे चित्त में और कोई नहीं। मुझे मुक्तितक की परवाह नहीं रही।

मैं एकान्त में आनन्द से हरि का अनन्त प्रेमरस भोगूं। यह प्रेमसुख गुह्य धन है। किसीकी बुरी नजर न लग जाय, इसलिए एकान्त में इसका सेवन करूँ। हमारा यह प्रेम बड़ा नाजुक है। वचनों का भार नहीं सह सकता।

कोई अपना, कोई पराया ! किन्हींका पालन करना, किन्हींसे झगड़ा करना ! कोई अधिक कोई कम किस गुण से होता है ? हे श्रीपति, तेरी माया मेरी समझ में नहीं आती ! इसलिए मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि मैं तेरा ही चिन्तन करता हूं।

सारी दुनिया हमको सताती है। इससे मन में शंका उठती है कि क्या नारायण मर गया ? अगर हम लोगों से डरने लगें तो क्या उससे ईश्वर को शर्म नहीं आयगी ?

सन्तों ने अपने चरण मेरे चित्त में रख दिये हैं। अब मुझे काल नहीं बांध सकता। मेरी सारी विषमता शीतल हो गई। अब अन्दर-बाहर एक ईश्वर ही है, इसलिए मन भयरहित हो गया है। भय तो अब स्वप्न में भी नहीं लगता।

हम विठोबा के लाड़ले हैं, इसलिए काल के भी काल हैं। अब सब जगह हमारा शासन है। अब ऐसी किसकी वैखरी वाणी है, जो हमारे सामने बोल सके ? अब हमारे हाथ में हरिनाम का तीक्ष्ण वाण है।

मैं खाता-पीता, लेता-देता हूं, परन्तु सारा जमा-खर्च करता हूं तेरे ही नाम पर। अब सारा झंझट खत्म हो गया। अपना सारा भार तेरे सिर पर डालकर मैं निश्चिन्त हो गया हूं।

हमारे लिए सर्व-दिशा और सारा काल शुभ हो गया है। जो अशुभ था,

वह मंगल का भी मंगल हो गया है। सुख-दुःख से विपरीत नहीं रहा। अब आघात भी हितफल देता है। अब सारे जीव हमारे लिए अच्छे हो गए हैं।

संचित ही भोगूं; आगे किसीका न लूं। आत्मस्वरूप में बैठा रहूं, किसीकी चाकरी न करूं। आजतक विषय-काम के हाथ पड़ा रहा, कभी विश्रांति न पाई। अब पराधीनता समाप्त हो गई। अब से मैं अपनी सत्ता चलाऊं।

जो सुखराशि बैकुण्ठ में भी नहीं मिलती, वे सर्व सुख-ऐश्वर्य मुझमें निरन्तर निवास करते हैं।

मुझसे प्रभु ने जैसा कुछ बुलवाया, वैसा मैं बोला, वरना मेरी जाति और कुल के बारे में तो आप जानते ही हैं। हे सन्त मां-बाप, मुझ दीन पर क्रोध न करके मुझे मेरी बातों के लिए क्षमा करो। मेरे भावी अपराधों को मन में न लाकर मुझे अपने चरणों के निकट जगह दो।

मैं सन्तों के घर का दास बनकर उनके द्वार-आंगन में लोटूंगा, क्योंकि उनकी चरण-रज के लगने से मेरे बयालीस कुलों का उद्धार होगा।

दुष्ट की संगति न हो। उससे भजन में बाधा पड़ती है। हे विट्ठल, दुष्ट लोग तेरा निषेध करते हैं, मुझे यह बिल्कुल सहन नहीं होता। मैं अकेला किस-किस से वाद-विवाद करूं ? तेरे गुण गाऊं या इन दुष्टों की खबर लूं ?

जिस पद में राम का नाम नहीं है, उसे सुनने में मुझे कष्ट होता है। तेरा कहलाकर अब दूसरे का कहलाने में मुझे लज्जा आती है। मुझे सर्व-भाव से एक तू ही प्रिय है।

मुझे सन्त-समागम और भगवान का नाम ही प्रिय है। मोक्ष की इच्छा यहां किसको है ? मैं तो भगवान की सेवा ही मांगता हूं।

मैंने अपना सब भार भगवान पांडुरंग पर छोड़ दिया है। वह मेरा सुख दुःख देखकर जिसमें अतिहित देखते हैं, करते है.

मैं अपने चित्त को मोड़कर धीरे-धीरे एक हित-मार्ग पर लाता हूँ, परन्तु पंडित दोष निकालते हैं। इससे शंका के आघात पहुंचते हैं। मैं संसार से डरता हूँ, एक भाव से भगवान के निकट आना चाहता हूं।

अपनी देहतक की हमने उपेक्षा कर दी है। अब कहां जाकर किसको हित की बातें सुनाऊं ? अपना-अपना संसार चलाने में कौन दक्ष नहीं है ? हमने सांसारिक विचारों का वमन कर दिया है। जब मैं अपनी जानतक की लालसा नहीं रखता, तो औरों की संभाल कैसे करूं ? जिस विषय में मुझे रस नहीं रहा, उसमें दूसरे की प्रसन्नता के लिए क्यों लिथड़ूं ?

इसकी मुझे स्पष्ट प्रतीति होगई है कि तारनेवाला और मारनेवाला तू ही है।

मेरा स्वरूप मेरे हाथ आ गया। अब सबकुछ अच्छा है। अब द्वैत किस-लिए ? वह तो अन्दर की गन्दगी है।

मैं भी भगवान हूं, आप भी भगवान हैं। परन्तु दोनों में एक-दूसरे के प्रति भीति अधिक है। जो कोई भक्ति में दृढ़ है, उसके पीछे-पीछे भगवान दौड़ते हैं।

गंगा के प्रवाह की तरह मैं सहज बोलता जाता हूं। भाग्यवान इसका सेवन करेंगे। यहां सब अधिकारी कहां हैं ?

प्रपंचों की यह खटपट कब पूरी होगी ? इस जाल से छूटकर मैं कब विश्रांति पाऊंगा ? इसके दुःख से मेरे प्राण निकलने-से लगते हैं। इस प्रपंच के स्वरूप की प्रतीति न होने से लोग उसमें सुखी हैं। भोगों से मेरा मन शुरू से ही त्रस्त है। सलिए वह कहीं छिपने का ठिकाना ढूंढ़ रहा है।

सारे संसार से अलग रहकर मैं दुनिया का कौतुक देखूंगा। संसार में भूले हुओं की आंखों में धुन्ध छा गई है। डूबे हुओं में से कोई सिर ऊपर नहीं निकाल सकता।

निश्चय मानो कि ये मेरे बोल नहीं हैं। मैं तो भगवान का मजदूर हूं। मेरी वाणी नामघोष से मधुर हो गई है और उससे मेरा मानस निश्चिन्त होकर आनन्दभरित हो गया है। अब संसार का भय नष्ट हो गया है। अब मैं चिदाकाश का हो गया हूं। यह सब सन्तों का प्रसाद है। इससे भगवान का आनन्द प्राप्त हुआ है।

पुत्र, पत्नी, बन्धु, आदि शरीर के संबंधी, धन के लोभी, मायावी लोग, मित्र, रिश्तेदार, स्वजनादि, नाना प्रकार के घातक कर्मों में लथेड़ते हैं। ये मुझे डुबाने की घात में हैं। इनसे मेरी रक्षा करो। हे प्रभो, मैं तुम्हारी शरण आया हूं।

जबतक हीरा नहीं मिला. तबतक कांच की शोभा, जबतक सूर्योदय नहीं हुआ, तभीतक दीपक की शोभा। उसी तरह जबतक तुकाराम से भेंट नहीं हुई है, तभीतक अन्य संतों की बातें चलेंगी।

मैंने अपना सब भार उसके सिर पर डाल दिया है, इसलिए मेरी सारी चिन्ता खत्म हो गई।

जिनके चित्त शुद्ध हैं, वे मुझे अत्यंत प्रिय हैं।

मेरे अहंकार पर पत्थर पड़ें। दंभ से प्राप्त हुए यश में आग लगे।

जो मेरे अनुभव में आया है, उसे ही मैं लोगों को देता हूं।

अंतर की ज्योति की दीप्ति जो पहले आच्छादित थी, प्रकाशित हो गई। उससे इतना आनन्द हुआ है कि ब्रह्मांड में भी वह नहीं समाता। उससे

मुझे जो सुख हुआ, उसके लिए कोई उपमा नहीं है।

धन-मान प्रारब्ध से मिलता है। प्रारब्ध से ही सुख-दुःख होता है। प्रारब्ध से ही पेट भरता है। इसलिए मैं व्यर्थ किसीको बुरा-भला नहीं कहता।

जगत् के साथ मुझे क्या लेना-देना? मेरा सारा बोझ पांडुरंग पर है। विठोबा का नामकीर्तन करना ही मेरा कुल-साधन है।

सुख का व्यापार करने से मुझे सुख की इतनी कमाई हो गई कि आगे-पीछे और सब दिशाओं में आनन्द-ही-आनन्द व्याप्त हो गया। अब तो मुझे देव की ही सोहबत और उसकी ही पंगत में बैठना है। समर्थ देव के घर में सब प्रकार की संपत्ति भरी पड़ी है। वहां कभी किसी चीज़ की कमी नहीं पड़ती। देव के घर में अपार लाभ का वास होता है।

दस में से एक आदमी अच्छा है, ऐसा कहें तो अन्य लोगों की निन्दा करने का दोष सहज ही लगता है। इसलिए कौन अच्छा और कौन बुरा इसका विचार करने की वृत्ति मुझमें है ही नहीं। सब विषयों में हम अपने मुंह पर ताला मार-कर वाणी का उपयोग केवल हरिनाम स्मरण में ही करें।

मैं हरिनाम का सिक्का लिये हुए हूं। उसकी सहायता से मैं कलिकाल को धक्का मारकर पीछे हटा सकता हूं। इस सिक्के को यों ही न समझना। यह जिसका है उसके समान है और उसके न मानने से नाक-कान कट जाते हैं। मैं नाम-रूपी सिक्के से निजानन्द के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ हूं।

भूतमात्र में देवता का वास है, यह समझकर मैं सब लोगों को आलिंगन देता हूं। परन्तु वैसा करते समय यह व्यक्ति पुरुष है या स्त्री, इसका विचार मन में नहीं लाता। मेरे मन के भाव को भगवान जानते हैं।

दसों दिशाओं में भटकनेवाला मेरापन जबसे तेरे पास लौट आया है, तबसे उसे परम तृप्ति हो गई है।

फ़िज़ूल की बातें कहने में वाणी का व्यय कौन करे ? अब तो मुझे वही करना है जिससे भगवान् को हृदय में धारण कर सकूं । ईश-चिन्तन का उपदेश देने से मैं पागल गिना जाता हूं ।

लोगों की निन्दा-स्तुति को सुनकर मैं बहरे की तरह रहूंगा, जैसे स्वप्न-सृष्टि जगने पर मिथ्या हो जाती है, उसी प्रकार इस प्रपंच को झूठा मानकर मैं अन्धे की तरह रहूंगा ।

मैं प्रभु के चरणों को कभी नहीं बिसारने का । इतना किया तो मेरी सब चिन्ताओं का भार भगवान अपना समझकर अपने ऊपर ले लेंगे । प्रभु-चरण रूपी सच्ची अमृत-संजीवनी मेरे हृदय में हमेशा रहती है ।

मेरा यह अनुभव आप देखिये कि मैंने ईश्वर को कैसे अपना बना लिया । ज्यों ही क्षुद्र संसार का त्याग किया कि भगवान अपने हो जाते हैं । मेरे धैर्य रखने से देव इतना मेरे पास-पास रहता है, मानो मझसे चिपट गया हो ।

'इस शरीर से मैं पृथक् हूं', इस बात को भूलकर मैंने अपना गला मूर्खतावश अपने ही हाथ से दबा डाला है—अपने स्वरूप को देह-बुद्धि से ढँक रखा है । 'यह मेरा घर', 'यह मेरा लड़का' ऐसा मैंने माना ही कैसे ?

मुझे समस्त जगत् देवरूप दीखता है । इससे मेरी गुण-दोष देखने की वृत्ति क्षीण हो गई है । यह बड़ा अच्छा हुआ है—बड़ा ही अच्छा हुआ है । आरसी में भले ही दूसरा प्रतिबिम्ब दिखाई देता हो, परन्तु तात्त्विक दृष्टि से देखनेवाले को बिम्ब और प्रतिबिम्ब एक-का-एक ही है । नदी का समुद्र के साथ समागम होने पर नदी का नदीपन खो जाता है और वह समुद्र ही हो जाती है ।

मुझे जो-कुछ मिला है, मेरे संचित कर्मों का फल है । मेरा अन्तःकरण प्रेम-भक्ति के माधुर्य से सराबोर हो गया है जिससे मैं आनन्द में ही रहता

हूं। मेरा जीवन आनन्द से भरपूर हो गया है। भगवान ने मेरे अज्ञान का पर्दा दूर कर दिया है, जिससे मेरी दृष्टि में सारा जगत् ब्रह्मानन्द से परिपूर्ण हो गया है। ईश्वर ने मेरी कामनाएं दूर कर दी हैं, इसलिए मेरी उसके प्रति बड़ी प्रीति है।

जो त्रिविध-ताप-ज्वर से पीड़ित हैं, उन्हें मैं नारायणरूपी औषध देता हूं।

जो देव सर्व-व्यापक है, वह मेरे हृदय में न हो, यह कैसे हो सकता है ?

देह-विषयक मैंने जो-जो आशाएं बांधीं, उनसे मुझे भारी क्लेश हुआ।

अमुक मनुष्य का समाधान करने से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। इससे स्वयं को और दूसरे को दुःख होता है।

पहले मेरे मन के अन्दर नाना प्रकार की आशाएं, और तत्संबंधी असंख्य चिन्ताएं थीं, परन्तु उन दोनों का अब मैंने नाश कर डाला है।

यदि ईश्वर-भक्ति का यह उपाय पहले से ही मैं जान गया होता, तो इतने कालतक गर्भवास (जन्म-मरण) का दुःख क्यों भोगता ? स्त्री पुत्र के कष्ट झेल-झेलकर नाहक क्यों मरता ?

मुझे तो एक शुद्ध भाव ही मान्य है। उसके अतिरिक्त अन्य किसी ज्ञान-चातुर्य की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है।

यह सब जगत् मुझे भगवान्-रूप दीखता है। इससे मुझे जो आनन्द होता है, उससे मेरा संपूर्ण शरीर शीतल हो जाता है। इसलिए मैं अपने अटपटे परन्तु प्रेमभरे शब्दों से उस देव की करुणा की भिक्षा मांग रहा हूं और ऐसा करने से मेरे मन को बड़ा सुख होता है। मुझमें जो भेदात्मक भावना थी, उसका क्षय हो गया है, जिससे मुझमें दुःख की तो छायातक नहीं रही। मैं तो तेरे

--- में रंग गया हूँ, इससे मेरा जीव अत्यंत सुखी हो गया है।

मैं ऐसे देव का दास हूं कि जिसे कोई कामना नहीं है और जो सुख-दुःख आदि द्वंद्वों से रहित है। मेरे योग-क्षेम को निभाने की पूर्ण चिन्ता उसे है। मेरा हितकर्त्ता भी वही है। मैं उसके गीत मधुर स्वर से गाऊंगा और अन्य किसी विचार को चित्त में प्रविष्ट न होने दूंगा।

लोक-सुख नाशवंत और बाह्य है। उसे लेकर मैं क्या करूंगा?

देव ने मुझे अमृत-पद का दान दिया है। इस उपकार के बदले मैंने उसे अपना कंठहार बना लिया है। 'यह मेरा, यह तेरा' मेरे इस द्वैत को देव नें क्षय कर डाला।

मुझे किसीसे कुछ नहीं मांगना। मांगने योग्य एक देव है और वह तो मेरे पास ही है। मैं उससे इन्द्र का पद मांग लूं मगर उसको लेकर क्या करूंगा? वह शाश्वत तो है नहीं। वैकुण्ठ-पद मांग लूं, उसमें भी कुछ मजा नहीं। वह एकदेशीय और दरिद्री है। चिरंजीव आयुष माँग लूं? जीव अमर तो है ही, फिर चिरंजीवपने में क्या ज्यादा है? जो एकत्व किसीसे किसी प्रकार कभी भ्रष्ट हो ही नहीं सकता, ऐसे आत्मैक्यभाव को ही मैं मांगता हूं।

मेरे घर में शब्द-रूपी रत्नों का खजाना है। शब्द ही मेरे जीने का एक साधन है और लोगों को मैं शब्द का ही दान देता हूँ। देखो, देखो, यह शब्द ही देव है और शब्द-गौरव से ही मैं उसका पूजन करता हूं।

जब मैं अपना संसार छोड़ बैठा हूं, तब मुझे लोकाचार की क्या दरकार है? देव के सिवा मेरा कोई इष्ट-मित्र, स्नेही-स्वजन, सगा-प्यारा है ही नहीं। अपने शरीर के संपूर्ण संबंधियों का मैंने त्याग कर दिया है। नाना प्रकार की प्रपंचपूर्ण उपाधियों की बातें सुनने से मेरे कान इन्कार करते हैं। प्रभु, दया करके मुझे विषय-वासना के सुख-दुःख से दूर रखना।

मैं हर समय हरिनाम स्मरण करता रहता हू, इससे मेरा मन समाहित अवस्था में रहता है और उसीका नाम है समाधि। मैं कहीं गुफा आदि में भटकने नहीं जानेवाला। मैं तो वहीं रहूंगा जहां भक्तों की मंडली जमी होगी। नाम-स्मरण के सिवा उपवास, व्रत, आदि मैं कभी नहीं करनेवाला।

जिस घड़ी मैंने अपना जीवभाव तुझे अर्पण कर दिया, उसी घड़ी उसका ऐसा क्षय होगया कि वह ढूंढ़े भी नहीं मिलता! हे अनन्त! अब तो मैं जो-कुछ करता हूँ, तेरी ही सत्ता द्वारा करता हूँ।

देव का और मेरा भूल से ही स्वरूपैक्य है। झठे प्रपंच के मोह के कारण देव से मिलने में बड़ा विलम्ब हो गया।

जिनकी वृत्तियां स्थिर हो गई हों, उनको मैं अपना मित्र मानता हूं।

स्वामी की सत्ता द्वारा सम्पूर्ण मर्म पहले से हस्तगत हो जाने पर बार-बार विशेष लाभों की प्राप्ति होती रहती है। मैं भावहीन सयाना नहीं हूँ। मैंने अपने स्वामी के मन के साथ अपना मन मिला लिया है, जिससे मैं उसके अन्तःकरण की बातें जान जाता हूं। मैं परिश्रम-पूर्वक अपने मन को प्रत्येक क्षण जाग्रतावर्स्था में रखता हूं। अब मैं देव से तनिक भी विलग नहीं रहने वाला।

चित्तवृत्ति को एकाग्र करके मैं हर ग्रास और हर घूंट पर देव का स्मरण करता हुआ खाता-पीता हूं। मैं चित्त को जाग्रत रखता हूं, द्वैतभाव के घुस आने की मुझे बड़ी आशंका रहती है।

मेरी इच्छा थी कि लोगों के ऊपर अपने बड़प्पन की छाप बिठाकर खूब मान प्रतिष्ठा पाऊं, इसी कारण देव मुझसे विलग हो गया है।

अब अहंकार से मेरा संबंध नहीं रहा, इससे तमाम प्रपंच का निरसन हो गया है।

मेरी अविद्या की रात्रि का अन्त आ गया है। अब देहबुद्धि-रूपी मोहनिद्रा को भूल गया हूं। मेरा निवास नारायण के स्वरूप के अन्दर हो गया तबसे मुझे आनन्द-ही-आनन्द हो गया हैं। तमाम जगत में सब जगह सब-कुछ मेरे ही स्वरूप से परिपूर्ण हो गया है। इससे मैं यह समझ गया हूं कि मेरा यह ज्ञान कितना मिथ्या था कि 'मैं यह देह हूं', और 'इस देह के संबंधी मेरे संबंधी हैं।' अब तो देव और मैं दोनों एकरूप हो गए हैं।

मैंने बहुत-से मत-मतान्तरों का त्याग किया है और जिसके द्वारा अपना कार्य हो जाय उसे ही पकड़कर बैठा हुआ हूं।

देह तो कर्माधीन है। उसके योग-क्षेम को अपने सिर पर लेकर मैं क्यों वृथा दुःख करूं? शरीर के संबंधियों को अपने संबंधी मान बैठने की दुर्भावना से मैं आज तक बड़े संकट उठाता आया हूं।

मेरा मन निश्चल और स्थिर हो गया है, जिससे मुझे बांध रखनेवाली आशा के बंधन टूट गए हैं। हरि-प्रेम-प्रवाह से मुझमें आनन्द की बाढ़ आ गई है।

मैं अपने चित्त में एकनिष्ठ भाव धारण करके भूत-मात्र के प्रति दया, क्षमा और शान्ति धारण करके रहता हूं।

लक्ष्मीपति सरीखा दातार मुझे मिला है, फिर मुझे मांगने के लिए रहा क्या?

भगवान् के चरणों के निकट कमी किस बात की है। उनके आगे ऋद्धियां और सिद्धियां दासी बनी खड़ी रहती हैं। परन्तु उस नाशवंत सुख की ओर निगाह कौन करता है? मैं पाप-पुण्य दोनों को पार कर गया हूं।

ऐसी मधुर प्रेम-भक्ति का आनन्द-भोग छोड़ मुझे जीवनमुक्त बनने से

क्या काम ? नारायण स्वयं भक्तों का दास है, फिर उससे मिलना क्या मुश्किल है ? हे देव, मुझे सायुज्य मुक्ति नहीं चाहिए। मैं तो सन्तों के समागम में अधिक आनन्दपूर्वक रहूंगा।

वैकुंठ के दिव्यभोग मुझे इसी लोक में भोगने मिलें, ऐसा उच्च प्रेम मैं मांगता हूं।

मान-अमान, भाव-अभाव आदि सब द्वन्द्व टल गए और मेरी देह ही भगवान-स्वरूप बन गई है। ऐसी अवस्थावाले भाग्यवान् हैं। जीवन का यही हेतु होना चाहिए।

भूतमात्र में भगवान का वास है, ऐसा पूर्ण अनुभवयुक्त वैराग्य मुझे प्राप्त हुआ है।

मैं जिसको चाहूंगा, मान दूंगा, मेरी मर्जी न होगी तो न दूंगा। वैसे, राजा और रंक मुझे समान हैं। जब मैं अपनी देह तक के प्रति उदासीन भाव रखता हूं, तब दूसरे की आंख की शरम रखने का मुझे क्या कारण है ? तब तो मैं अपनी सहज लीला के अनुसार खेल खेल रहा हूं। मैं सुख और दुःख से परे हो गया हूं।

अपने कुटुम्ब के भरण-पोषण का भार मैंने तेरे ऊपर डाल दिया है। मैं तो एक निमित्त-मात्र हूं। मैं व्यवहार का कामकाज करता हूं, परन्तु हृदय में हर समय तेरा नाम धारण किये रहता हूं।

स्वरूप-अज्ञान-रूपी अंधेरी रात्रि को मैं खा गया हूं, इसलिए अब काल भी मुझे नहीं पकड़ सकता। स्वरूप के ऊपर पर्दे की तरह पड़ी हुई माया ने ही इस प्रपंच का तमाशा खड़ा कर रखा है। उस माया ने प्रपंच का वेश धारण करके जो भाव प्रकट किया वही अब नहीं रहने पाया, इसलिए देहादिक प्रपंच के घर में मुझे फिर से घुसना पड़े, ऐसी परिस्थिति ही नहीं रही।

इसका कारण यह है कि मैंने तमाम उपाधियां श्रीहरि के पास भेज दी हैं। अब मैं किसीके हाथ नहीं आनेवाला। अब मेरी ऐसी अचिन्त्य स्थिति हो गई है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता।

मैं अणु-रेणु से भी सूक्ष्म हूँ और आकाश जितना बड़ा हूं। मैंने भ्रमजन्य देहादि प्रपंच के आकार का क्षय कर दिया है। ज्ञेय, ज्ञाता और ज्ञान की त्रिपुरी का निरास करके मैंने आत्मबोध-रूपी दीपक अपनी देह के अन्दर प्रकटाया है। अब तो मैं अपना अवशिष्ट प्रारब्ध भोगने भर के लिए और लोकोपकार के लिए ही जीता हूं।

मान, प्रतिष्ठा और दम्भ मुझे सूअर की विष्ठा के समान लगता है।

मृत्यु आने से पहले ही मैं तो मर चुका हूं। मेरे मन में जो आता है सो करता रहता हूं। तुम मेरे नये-नये खेल देखा करो, मेरे साथ विवाद करने का व्यर्थ श्रम न लो।

अब किसीको मुझसे कोई आशा नहीं रखनी चाहिए। मैं तो भगवान के लिए दीवाना बन गया हूं।

संग्रह, त्याग पर मैंने बड़ी सिरपच्ची की। उससे दुःख घटने के बदले बढ़ा। अब तो मैं अनन्त के कदमों के आगे पड़ा रहता हूं। अब मुझे जन्म-मरण के जंजाल में फंसने का कोई कारण नहीं रहा।

एकविध भाव से एकान्त में रहने से जो सुख होता है, वह मुझे प्राप्त हो गया है।

अब मैं सत्त्व, रज और तम, इन तीनों गुणों को त्याग करके निर्गुण देव का बन गया हूं।

मैं क्या गाऊं? मेरा गाना सुननेवाला तो कोई है नहीं। जहां जाता हूं, सारी दुनिया को वि षय-तृष्णा से भान भूली हुई पाता हूँ। इसलिए अब

में अपने आत्माराम के साथ क्रीड़ा करूंगा और जैसी वन पड़े वैसी बात करके छूटूंगा।

जो निष्काम चित्त से राम-भजन करता है, उसका मैं दास हूं।

जो तृष्णा के आसन पर बैठे हैं, उनका कुछ नहीं बचनेवाला, सब लुट जायगा। इसलिए मैं दुनिया से मुंह मोड़कर राम के रास्ते लगा।

संसारी लोगों को पैसा अपने जीवन से भी अधिक प्यारा लगता है, परन्तु मुझे वह पैसा पत्थर से भी तुच्छ लगता है। सगे-संबंधी, इष्ट-मित्र, सज्जन और वन ये सब मुझे एक सरीखे हैं।

श्रीहरि का कीर्त्तन करके मैं शुद्ध हो गया हूं, इसलिए मेरे लिए तो सारा त्रैलोक्य भी शुद्ध हो गया है। अब से मैं परब्रह्मरूपी नगर में स्थायी रूप से रहता हूं। वहां भेदात्मक प्रपंचरूपी अपवित्रता पर मेरी निगाह नहीं पड़ती। अब मैं एकान्त में परब्रह्मरस का पान करता रहता हूं।

मैं जन्म-मृत्यु के चक्कर में फंसकर बहुत थक गया था, परन्तु राम-स्मरण से वह थकान दूर हो गई और मेरी काया शीतल हो गई।

मेरी कुल पूंजी एक भगवान है। ये शब्द भी मेरे मुख से उन्हींने बुलवाये हैं।

समस्त व्यसनों को नष्ट करके और संगमात्र का त्याग करके मैं बिलकुल निःसंग भाव से नाचनेवाला नट बन गया हूँ। इससे मैं सर्वत्र समान रूप से देव को ही देखता हूं सर्वत्र मैं ही व्याप्त होगया हूं। अब किसी और को नहीं आने देनेवाला।

द्रव्य की और कुटुम्बियों की अब मुझे कोई अभिलाषा नहीं है। मुझे अपनी जान की परवाह नहीं। शरीर तक को वस्त्र से ढकने की क्या

आवश्यकता है ? अब मुझे लाज-शर्म भी किसकी रखनी है ? क्योंकि चारों तरफ एक देव के सिवा मुझे और कोई नहीं दिखाई देता।

शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के क्षण मेरे लिए शुभ ही हो गए हैं; क्योंकि मुझे विश्वास हो गया है कि देव मुझपर कृपा करेंगे ही। इसलिए अपने सम्पूर्ण व्यापारों में मैं आनन्द का ही व्यापार करता रहता हूँ। इसके सिवा और कुछ मैं जानता तक नहीं हूं। ऐसा होने से मेरा चित्त समाहित रहता है। इसलिए लाभ, हानि, सुख-दुःख के धक्के मेरे अन्तःकरण को नहीं लगते। इस प्रकार मैं संसार में रहते हुए भी उसमें लिप्त नहीं होता। प्रापंचिक विस्तार को मैंने अपने मन से दूर कर रखा है और मेरे अन्तःकरण की प्रीति तो मेरे जीवनाधार तुल्य हरि के नाम पर स्थिर हो गई है। इससे मेरे मन पर होनेवाले तमाम आघातों-प्रतिघातों का शमन हो गया है।

: २ :

नाम-महिमा

विदुर के यहां साग-पात खाने से क्या देव भूखा रह गया था ? कुब्जा दासी का बदन तीन जगह से टेढ़ा था। वह कुरूपता की राशि थी। फिर भी भगवान ने उसीका स्वीकार किया था न ?

साधु-सन्तों का नाम लेने से पुण्य होता है। इसीलिए मेरी वाचा उनका निरन्तर नाम लेती है। इससे महालाभ मुफ्त में मिलता है। सन्तों के चरणों में भावलीन रहना ही विश्रांति है। सन्तों के जप से सब पाप कट जाते हैं।

कुमुदिनी अपनी सुगंध को नहीं जानती, उसका भोग तो भ्रमर ही करता है। इसी प्रकार हे देव ! अपने नाम की मिठास की आपको जानकारी नहीं है, उसका प्रेम-सुख तो हम ही जानते हैं।

आपके चरणों के सुख के संबंध में क्या कहूं, आपको उसका अनुभव नहीं है। कितना ही वर्णन करूं, आपको सत्य नहीं लगेगा, क्योंकि अमृत के गुण अमृत नहीं जानता।

हरि का नाम सार का भी सार है। इससे यम भी शरणागत होकर किंकर बन जाता है। नाम उत्तम से भी उत्तम है। इसलिए वाणी से पुरुषोत्तम बोलो। क्या कहूं, भगवान् के चरण ही तारक हैं।

अन्तकाल में भी जिसके मुंह में देव का नाम आ गया, उसके सुख का पार नहीं है।

मुंह से भगवान का नाम लूं, यही मेरा नियम-धर्म है; सन्तों के पैरों पड़ना, यही मेरी उपासना है।

भगवान का नाम ही अच्छा है, वही सत्य है। उसीसे बंधन टूटते हैं; उसीसे दोनों लोकों में कीर्ति होती है। जिसमें हरि की श्रद्धा है, उसे हरि की प्राप्ति तत्काल होती है। भोला भक्त कलिकाल को जीतना जानता है।

देव-प्रेम मन में न हो तो न सही, मगर वाणी में उसका नाम हमेशा रहने दे। उसके चिन्तन में और नाम-संकीर्तन में जीवन बीते। चाहे नाम दंभ से ही क्यों न ले, मगर ले, कभी-न-कभी भगवान सुध लेंगे ही।

भगवान का नाम लेने से भवरोग का निरसन होता है, संचित क्रियमाण भोग का नाश होता है। इसे उच्चारने से जन्म-मरण का नाश होता है, पाप नजदीक नहीं आ सकता, त्रिविध-ताप जाता रहता है, माया दासी हो जाती है और पैरों पड़ने लगती है।

हे प्रभो, अगर मैं पतित न होता तो तू पावन किसको करता ? इसलिए पहले मेरा नाम है, बाद में तेरा। अगर लोहा न होता तो पारस पत्थर अन्य पत्थरों जैसा होता। भगवान कल्पना से कल्पतरुतक को कल्पित वस्तु देता है।

मुझे यह निश्चय हो गया है कि मैं इस भवसागर से पार हो गया हूं। संसार को छोड़कर तेरा नाम कंठ में धारण किया है। अब एक हरि को छोड़कर और कुछ शेष नहीं बचा।

भगवानरूपी मां याद करते ही दौड़ती आकर याद करनेवाले को प्यार करती है। हरि के नाम गाने से सायुज्यता (मुक्ति) मिलती है।

यहां सब सुखों का आधार नाम है। जब द्वैत चला जाता है, उसी समय ब्रह्म का साक्षात्कार हो जाता है और शरीर भी ब्रह्मरूप हो जाता है। भ्रांति छोड़कर देखोगे तो सब सुख नाम में ही दिखाई देंगे।

भगवान का नाम ही सर्वधर्म है। इसके अलावा मैं दूसरा साधन नहीं जानता।

द्रव्य को मैं गन्दी चीज़ मानता हूं। कारण, उसके पीछे काल लगता है। नारायण के नाम का ही जीवन मैंने धारण कर लिया है। मेरे पास जो याचक आयेंगे, उन्हें इसीका दान देने की कोशिश करूंगा।

सारभूत मर्म राम है, इसलिए हम भाविक भक्तों ने उसे हृदय में रख लिया है। लोहा, चकमक, पत्थर और रुई, ये अग्नि को सिद्ध करने के लिए ही रखने पड़ते हैं, वरना उनका बोझा कौन उठाने बैठे!

भगवान जो-कुछ करते हैं, मेरे भले के लिए करते हैं, यह अनुभव मेरे चित्त को पूरी तरह हो गया है। मेरे जीव को अपार आनन्द हो गया, क्योंकि परमानन्द ने मेरा सम्पूर्ण भार ले लिया। उन्हें अपने नाम का अभिमान है, इसलिए वे शरणागत को अपने बल से तारते हैं।

नाम से ही सिद्धि होगी, मगर वह नाम दोषरहित बुद्धि से लेना चाहिए।

राम ही राज्य है, राम ही प्रजा है, राम ही लोकपाल है। दूसरा कोई नहीं है। स्वामी-सेवक का भाव नष्ट हो गया है।

जहां दया, क्षमा, शांति है, वहां देव का वास है। देव उसके घर दौड़ता आ जाकर उसके हृदय में वास करता है। देव का नाम लेने से उसकी पूजा व प्राप्ति हो जाती है।

जिसकी जीभ पर भगवान का नाम नहीं आता, उसकी बोली मुझे अच्छी नहीं लगती। जो भगवान से सब प्रकार से विमुख है, उसे मैं अपना कभी नहीं कहता, वह मेरा शत्रु है। जिसको भगवान का नाम प्रिय नहीं है, वह अधम है।

जिस क्षण देव के चरणों में मेरी बुद्धि स्थिर हुई, उसी क्षण मेरे मनोरथ पूर्ण हो गए। जीव समाधान पाकर निश्चल हो गया, और आकुलता की मुझे याद तक न रही। भगवान के प्रेमसुख से मन के सुखी होने के कारण त्रिविध-ताप का दहन हो गया। महालाभ भगवान का वाणी पर वास हो गया और हृदय में भी उनका अखंड अंगसंग हो गया। आत्मा के परमात्मा पद पाने से विश्व विश्वंभर में लय हो गया।

राम के दो अक्षरों को छोड़कर यह सब जंजाल किसलिए करना है?

आकस्मिक नामोच्चारतक से सद्गति मिलती है; वही नाम सतत लेने से भगवान निकट आकर खड़े हो जाते हैं; और राम-नाम-स्मरण भक्ति-भावपूर्वक किया तो उसकी स्थिति तो कौन जान सकता है?

नाम मीठा है। उसीसे सारी इच्छाएं पूर्ण होती हैं। अन्य रसों के सेवन से मृत्यु निश्चित आ जाती है। परन्तु इस नाम-रस से जन्म-मृत्यु-चक्र समाप्त हो जाता है।

नाम लेनेवालों के संसार-क्रम का निवारण हो गया। जिन्होंने रामनाम पर विश्वास रखा उन्होंने भवपाश तोड़ डाले। भाविकों ने नाम संकीर्त्तन से कलिकाल को झुकाकर अपने बस में कर लिया है।

प्रभु के भक्त चिन्ता-आशा-रहित होने के कारण सदा निर्भय रहते हैं।

यह बात बहुतों ने सिद्ध कर दी है कि मुख में नाम रखने से हाथ में मोक्ष आजाता है। उसके लिए न भस्म-दंड-लकड़ी चाहिए, न तीर्थ-भ्रमण। नाम चिन्तन हो, तो ईश-प्राप्ति में कोई बाधा नहीं आती।

जिसके मुंह में हरि का नाम नहीं है, उसके सुखों में आग लगे। मुझपर कितनी भी विपत्ति पड़े, परन्तु चित्त में राम रहे। हरि-चिंतनरहित धन,

सम्पत्ति, उत्तम कुल समूल जल जाय। हे प्रभो, मुझे वह स्थिति दो, जिसमें तुम्हारी सेवा होती रहे।

समुद्र-वेष्टित पृथ्वी का दान भी नाम-चिंतन की बराबरी नहीं कर सकता। इसलिए आलस न करो। रात-दिन रामनाम लो। तमाम वेद-शास्त्रों का पठन भी गोविंद के नाम की तुलना में कुछ नहीं है। प्रयाग, काशी, आदि समस्त तीर्थों की यात्रा भी रामनाम के सामने कुछ नहीं है। विठोबा का नाम ही सार है।

कविता करने से कोई सन्त नहीं हो जाता। न कोई सन्त का संबंधी होने से सन्त होता है। सन्त का वेष धारण करने से या सन्त उपनाम रख लेने से भी कोई सन्त नहीं हो जाता। शत्रु के प्रहारों को जो सहन करता है, वही शूर सन्त है। हाथ में इकतारा लेकर गुदड़ी ओढ़ने से कोई सन्त नहीं होता। कीर्तन करने से सन्त नहीं होता। पुराणों के अर्थ बताने से सन्त नहीं होता, वेद-पठन से सन्त नहीं होता, कर्मों के आचरण से सन्त नहीं होता; तप-तीर्थाटन करने से सन्त नहीं होता; वन-सेवन से सन्त नहीं होता; माला-मुद्रा से सन्त नहीं होता; भस्म रमाने से सन्त नहीं होता। जबतक देह-बुद्धि, देहात्मभाव, नष्ट नहीं हुआ, तबतक उपर्युक्त सब लोग संसारी ही हैं।

जो कोई हरि का नाम लेता है, उसके पीछे-पीछे प्रभु का प्रेम ौड़ता है।

हरि का नाम लेते ही संसार-बंधन टूटने लगते हैं। नाम के सिवा हरि-प्राप्ति का और कोई उपाय नहीं है। मैं सबसे पुकारकर कहता हूं, नाम लिये बिना न रहो।

हरि का नाम लेते ही पापों का नाश हो जाता है और उत्तम गति मिलती है। राम के नाम से कलिकाल थर-थर कांपता है। रामनाम लेने से मुक्ति मिलती है। सीसे आवागमन मिटता है और सारे संसार-बंधन टूट जाते हैं। किसी और तप-अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं है। भक्ति-भावसहित हरि का नाम जपो तो काल-यम शरण आ जायगा।

प्रेम से प्रभु के स्वरूप का स्मरण करके उसमें जीव को निमग्न कर देना ही प्रभु-मिलाप है। नाम-स्मरण से प्रभु का रूप ही अपने पास आ जाता है। प्रभु का नाम बार-बार लेने से शरीर की सम्पूर्ण नसें आनन्द से शांत हो जाती हैं।

'राम' नाम के स्मरण करने मात्र से ही काम और क्रोध भस्म हो जाते हैं और अभिमान निर्वासित हो जाता है। रामनाम से ही सब कर्मों का और संसार का बन्धन टूट जाता है और स्वप्न में भी हमें कोई तकलीफ़ नहीं होती। जन्म-मरण का दुःख नहीं सहना पड़ता; दरिद्रता कभी भी अनुभव नहीं होती। रामनाम के उच्चारण-मात्र से सर्वधर्म की प्राप्ति हो जाती है और अज्ञानान्धकार का पटल एक क्षण में दूर हो जाता है। रामनाम लेने से भव-समुद्र सहज में तरा जा सकता है, इसमें तनिक भी शंका नहीं।

नारायण का नाम एक ऐसी औषध है, जिससे भवरोग का नाश हो जाता है। इससे देव की कृपा होती है और शीघ्र ही कैवल्यपद की प्राप्ति हो जाती है।

हर समय विट्ठल भगवान के नाम का जप करना ही तमाम सुखों का सार है। यही साधन तमाम साधनों का मूल है। यह याद रखना कि जबतक तनिक भी देहाभिमान और देह का विचार है, तबतक नारायण पास नहीं आ सकते।

देव का स्मरण करने से मन का तमाम भय टल जाता है और चिन्ता करने का कोई कारण नहीं रहता। 'कृष्ण' का उच्चारण प्रेमसहित करने से तन मन शान्त हो जाता है।

हर समय मुंह से नामोच्चार करने की भक्ति चारों प्रकार की मुक्तियों से श्रेष्ठ है। इसी नाम की सहायता से मैं ब्रह्म के साथ स्पर्द्धा में उतर आया और भक्त से भगवान बन गया।

यदि रामनाम का रस लग जाय तो तुम्हारी देह भी रामरूप ही बन जाय। फिर तुममें और देव में कोई अन्तर नहीं रहनेवाला। तुम्हारा मन आनन्दस्वरूप हो जाय और तुम्हारी आंखों से प्रेमाश्रु बहने लगें।

चारों वेद पढ़ चुकने के बाद जो हरिगुण गाने बैठे तो जानना कि वह वेद का अर्थ ठीक समझा है। योग, यज्ञ, दान, आदि चाहे जो करो, परन्तु उन कर्मों को करते-करते यदि कण्ठ में हरि का नाम रमा रहता है तभी उन कर्मों का फल मिलता है। तू नाना प्रकार की खटपटों की वृद्धि करने के बदले सबके सारस्वरूप एक हरि के नाम को ही अपने गले का हार बनाये रख।

राम का भजन तमाम मधुर वस्तुओं का सार है। वह जन्म-मृत्यु के दुःख का और त्रिविध ताप का नाश कर डालता है। खाते-खाते युग-के-युग बीत गए, फिर भी भूखे-का-भूखा! जिसने रामरस का सेवन किया वह जन्म-मरण के फेरे में कभी नहीं पड़ता।

जो कोई रास्ते चलते-चलते रामनाम लेता जायगा, उसे कदम-कदम पर यज्ञ करने का पुण्य प्राप्त होगा। उसका शरीर तीर्थ और व्रत के उत्पत्ति-स्थान के समान बन जायगा। वह सचमुच धन्य-धन्य हो जायगा। लौकिक व्यवहार के काम करते-करते जो रामनाम का स्मरण करता रहेगा, वह सदाकाल सुख की समाधि का भोग करेगा। जीमते-जीमते जो ग्रास-ग्रास पर रामनाम जपता जायगा, वह खाने पर उपवासी ही है। भोग और योग दोनों प्रसंगों पर रामनाम का स्मरण करनेवाला कभी कर्म में लिप्त नहीं होता। जो हर समय रामनाम का जप करता रहेगा, वह जीते हुए भी मुक्त ही है।

रामनाम के समान दूसरा पुण्य नहीं है। नाम तो अमृत का भी सार है, निज स्वरूप का बीज है, और सब गुह्य तत्वों में गुह्य है। नारायण के सिवा और किसीपर भरोसा न रखो।

: ३ :

भक्त और सज्जन

जो अपने हित के विषय में जाग्रत हो गया है, उसके माता-पिता धन्य हैं ! उसे देखकर भगवान प्रसन्न होते हैं।

जिसका सब अहंकार चला गया और जिसमें निंदा, हिंसा, कपटादिक व्यवहार नहीं, और देहबुद्धि भी नहीं, वह निर्मल स्फटिक सरीखा स्वच्छ है। अधिक क्या कहें, उसका सब शरीर चिन्तामणि रूप ही है। वह सब तीर्थों को पावन करनेवाला तीर्थ हो गया है। जिसके दर्शन से मोक्ष-लाभ होता है, जिसका मन शुद्ध हो गया है, उसको माला आदि बाहरी चिन्हों की कुछ भी आवश्यकता नहीं; एक मन के शुद्ध होने से वह सब भूषणों से मंडित होता है, और जो निरन्तर हरि-गुण गाता है, उसमें अखंड आनन्द रहता है। जिसने अपना द्रव्य, देह और मन प्रभु के अर्पण कर दिया है और जिसे कोई आशा नहीं है, ऐसा पुरुष पारस-मणि से भी बढ़कर हैं।

जिसके मुंह में अमृत तुल्य मीठे शब्द हैं, जिसकी देह प्रभु के लिए ही लगी हुई है, जो पुरुष सर्वांग-निर्मल है और जिसका चित्त गंगाजल के समान पवित्र है, उसके दर्शन-मात्र से तापत्रय मिटते हैं एवं विश्रांति मिलती है।

चित्त का अगर समाधान हो गया तो विषवत् दुःख भी सोने सरीखे सुखकर लगते हैं। विषय की अति-लालसा बहुत बुरी है। चित्त अगर विक्षुब्ध है तो चन्दन का उबटन भी अंग को जलाता है। मन अगर अस्वस्थ है तो सुखोपचार से भी पीड़ा होती है।

जिसको एक देव ही प्रिय है और जिसमें देव के प्रति अखंड प्रेमभाव है,

भूमंडल में वही पवित्र और वही भाग्यवान है। उस पुरुष की सेवा देव को पहुंचती है।

जो भगवान के चरणों का चिन्तन करते हैं, वे सज्जन मेरे प्रिय संगी-साथी हैं। अन्य लोगों को मैं मर्यादापालन-मात्र के लिए मानता हूं; क्योंकि आखिर वे सब देव के ही तो अंश हैं। परन्तु मुझे हरि-भक्ति करनेवाले जितने प्रिय हैं, उतने अन्य नहीं हैं।

चौदह लोक जिसके पेट में हैं, उसे हमने अपने कंठ में धारण किया है। हमारे घर कुछ कमी नहीं है। ऋद्धि-सिद्धि हमारे दरवाजे पर सेवा में तत्पर रहती है, जिसने तमाम राक्षसों को बांध लिया, ऐसा प्रभु हमारे सामने दोनों हाथ जोड़ता है। जिसके रूपादिक नहीं, उसे हमने अपनी भक्ति के जोर से सगुण-साकार किया है। जिसके शरीर में अनन्त ब्रह्मांड हैं, वह हमारे लिए चींटी के समान है। आशा को छोड़ करके हम भगवान से भी बलवान हो गए हैं।

संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्म भक्तों के नहीं होते; क्योंकि भक्त के अन्दर-बाहर एक देव का ही अनुभव होने के कारण उसका सबकुछ वही होगया है। सत्त्व, रज, तम गुणों की बाधा कभी हरि के भक्त को नहीं होती। देव से भक्त भिन्न नहीं हैं।

द्रव्य-इच्छा जिसके चित्त में नहीं है, मान, अपमान, मोह, माया जिसे मिथ्या भासती है, जो सर्व-तत्त्वज्ञान संपादन कर और ज्ञान का अभिमान छोड़कर आचरण करता है, ऐसे पुरुष को साधु अकस्मात् मिल जाते हैं।

जो पर-दुःख और पर-सुख को अपना माने वही साधु है। वही देव को समझता है। मक्खन जैसे अन्दर-बाहर कोमल है, उसी तरह सज्जनों का चित्त होता है। निराश्रित को जो हृदय में रखता है, अपने दास-दासियों पर जो

पुत्र की-सी दया रखता है, उसे क्या कहूं ? वह तो मानो साक्षात भगवान की मूर्त्ति है।

जिसके चित्त में द्रव्य और दारा (कामिनी और कंचन) की इच्छा नहीं है, उसने संसार पार कर लिया। शुभ-अशुभ से जिसको हर्ष-शोक नहीं होता, वह जग में जनार्दन होकर रह रहा है। जिसने देव को देह अर्पण कर दिया, फिर उसे कुछ करना बाकी नहीं रहा।

हम प्रभु के दास कलिकाल से भी डरनेवाले नहीं हैं। मृगजाल सरीखे प्रपंच में भटक जायं, यह कभी नहीं होनेवाला। धूल उड़ाने से सूरज की किरणें मैली नहीं होतीं।

नटों की तरह वेष रखकर हम सब खेल दिखलाते हैं, मगर उससे हमारे आत्मबोध में अन्तर नहीं पड़ता। बहुरूपियों की तरह कौतुक से हमने खेल जमा रखा है, फिर भी अपने स्वरूप को जानते हैं। स्फटिक मणि लाल-पीले रंगों की चीजों के योग से वैसे रंग बदलती है, मगर किसी रंग से मिल नहीं जाती। हम संसार से अलिप्त रहकर निश्चिंत क्रीड़ा करते रहते हैं।

कोई साधनेवाला हो तो साधन दो ही हैं—पर-द्रव्य और पर-नारी को त्याज्य माने। फिर उसके घर भगवान का भाग्य और सकल संपत्ति आयगी। ऐसे पुरुष का शरीर देव का भंडार-गृह है।

जैसे किरणें सूर्य से अलग नहीं, मिठास शक्कर से अलग नहीं, उसी तरह मैं देव से अभिन्न हूं।

सच्चे भक्त परमेष्ठि पद को भी सर्वदा तुच्छ मानते हैं। सदा हरि का चिन्तन करना ही उनका धन है। इन्द्र-पद आदि भोग, भोग नहीं भवरोग हैं। सार्वभौम राज्य से भक्तों को कोई काम नहीं। पाताल के आधिपत्य को वे केवल दारिद्र्य मानते हैं। योग-सिद्धि-सार उन्हें असार लगता है। मोक्ष

सरीखा महान् सुख भी उन्हें दुःख लगता है। हरि के सिवा उन्हें सबकुछ त्याज्य लगता है।

जिसने अपने हृदय में हरि को धारण किया है, उसका आवागमन समाप्त होगया। सारा व्यापार सफल हो गया। हरि हस्तगत होगया कि फिर कोई भय चिन्ता नहीं। हरि भक्तों में कोई विकार नहीं रहने देता।

जिसने भगवान के लिए संसार छोड़ दिया है, उसपर उनका अतिशय प्रेम होता है। वह ऐसे भक्त के पीछे दौड़ता है और उसके सुख-दुःख को स्वयं सहता है। भक्त का काम है कि वह भगवान का नाम ले, और भगवान का काम है कि वह भक्त के काम करता रहे।

जो अखंड भक्ति जानता है, वही देव का पुतला है। उसके बिना कोई पंडित हो या बुद्धिमान, मेरे नज़दीक दैववान नहीं। जो नवविध भक्ति जानता है, वही शुद्ध है।

जो मन को विषयों में जाने से रोककर पीछे लाता है, वह बली है, इस भूमंडल में वही एक शूर है।

स्नान संध्या करता है मगर परान्न खाकर उसे निष्फल करता है, जिसके अन्दर सात्त्विक धैर्य नहीं, उसे देव कभी नहीं मिलता।

प्रेम-सूत्र की डोरी से हरि को जिधर ले जाओ, उधर जाता है। भक्त ने अपनी काया, वाचा और मन को भगवान के अर्पण कर दिया है। सारी सत्ता उसके हाथ है। इसलिए आकुल-व्याकुल क्यों होऊं ? वह जैसे रखेगा, वैसे रहूंगा।

जिसका हृदय निर्मल है, वह भावशील धन्य है। जो देव-प्रतिमा का पूजन करता है, संत कहें वहां भाव रखता है, विधि-निषेध न जानता हुआ चित्त में भगवान की एकनिष्ठा रखता है, देव को उसका भाई हो जाना पड़ता है।

जहां-जहां राजा जाता है, तहां-तहां उसका वैभव साथ चलता है। उस राजा को क्या यह कहना पड़ता है कि "मैं देशान्तर जा रहा हूं, यह वैभव साथ ले चलो।" जिसके हृदय में नारायण रहता है, उसपर नारायण की पूर्ण कृपा रहती है। इसकी पहचान समता है।

सब जीवों में भगवान है, इस संकेत को मैं जानता हूं, इसीलिए तीर की तरह तीक्ष्ण उत्तर देता हूँ।

हमारी यह विशेषता है कि अनीति के मार्ग से चलनेवाले जीवों को हम नीति-मार्ग दिखलाते हैं और जो कोई चूके, उसकी फजीहत करते हैं। एक परमात्मा का सदा डंका बजाने में क्या बाधा है? इससे अगर सारी दुनिया कुपित हो तो क्या हो जायगा? जहां राम-कृष्ण-नाम सरीखे बाण छूट रहे हों, वहां अविद्या को कहां जगह मिलेगी? जहां सत्य का उपदेश होता है, वहां असत्य नहीं ठहर सकता।

अब मैं तेरे ही मंगल गुणगान करूंगा और मस्त होकर हरिकथा कहूंगा। मेरे तमाम भय, व्याकुलता और पाप-पुण्य को निवारनेवाला तू है। आजतक जो भोग भोगे, उन्हें तेरे हवाले करके इस दुनिया में अलिप्त होकर रहूंगा। हम तेरे प्यारे बच्चे हैं, तेरे चरणों से अलग नहीं रह सकते।

मुझे किसी चीज के मांगने की इच्छा नहीं, तो फिर मैं ऐसा संकोच किसलिए करूं? दिल में इच्छा रखकर मैं किसी नीच की कभी प्रशंसा नहीं कर सकता।

भगवान को मंदिर की सीढ़ी के पास से नमस्कार करने से कैसे उद्धार हो जायगा? साक्षात् भेंट होने से जो होता है, वही सबको अच्छा दीखता है। एक-दूसरे को नजर से न देखकर कोरी बातें करना फिजूल है। इसीलिए मैंने बोलना बन्द करके अन्तःकरण को साक्षी बना रखा है।

हम विष्णुदास कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर हैं। हम देह-बुद्धि से मृतक और आत्मस्थिति में जीवित हैं। भलों को अपनी लंगोटी तक दे देंगे, मगर दुष्ट के सर पर लाठी जमा देंगे। मां-बाप से भी ज्यादा प्यार करनेवाले हैं और शत्रु से भी ज़्यादा हानि पहुंचानेवाले हैं। हमारे आगे अमृत क्या मीठा है और विष भी क्या कड़ुवा है? हम पूर्णतः मीठे हैं, जिसकी जैसी इच्छा होगी, हमारे निकट पूरी होगी।

जिनके अन्तःकरण में दया है, वे संसारी प्राणी धन्य हैं। वे यहां उपकार के लिए ही आये हैं। उनका घर बैकुंठ में है। जो झूठ नहीं बोलते, देह के प्रति उदासीन हैं, ओठों पर मधुरी वाणी है, उनके पेट में पुष्कल अवकाश है।

मन निष्कपट है, वाणी रसाल है, इसीको लक्ष्मी (ऐश्वर्य) कहते हैं। ऐसे ही भाग्यवंत को जीना चाहिए। जो हमेशा नम्र रहता है, उसका नाम लेने से हरकोई संतुष्ट होता है।

सबकुछ विष्णुमय है, यह वैष्णव ही जानते हैं। बाकी के लोग ज्ञान का बोझा व्यर्थ सिर पर लिये फिरते ह। विभिन्न साधन केवल कष्टप्रद हैं। उन सबके करने में उलझनमात्र है। अहंकार क्षीण होना चाहिए। अभिमान का नाश करना बड़ा कठिन है। मायाजाल वज्र से भी नहीं टूट सकता। इसका मर्म केवल हरिभजन से ही मिलेगा; अन्यथा नहीं।

मुनि लोग गर्भवास से डरकर मोक्ष को चले गए। मगर हम विष्णुदासों को वह गर्भवास सुलभ है। सारे संसार को प्रभुमय कहकर हमने उसे ब्रह्मरूप कर दिया। पुराणों में मोक्ष-साधन को कठिन बताया है, मगर हमारा वैकुण्ठ जाने का मार्ग बड़ा सरल है। हम सब जनों के साथ हमेशा हरि का प्रेमसुख लेते हैं।

ईश्वर के सेवक बड़े शूर हैं, इसलिए काल उनके पैरों पड़ता है। वे घोष से प्रभु का जय-जयकार करते हैं, जिससे दोषों के बड़े-बड़े पहाड़ भी जल

जाते हैं। जिसके हाथ में शांति, दया, क्षमा के अभंग वाण हैं, भूमंडल में वही बली है।

, देह और देह के संबंधियों को निंद्य माने और श्वान-शूकरा का वन्दन करे—ऐसी स्थिति हो जाय, तभी समझना कि 'मैं' और 'मेरे' का खात्मा हो गया। मोह के कारण गर्भवास करना पड़ता है। घर, पैसा और स्वदेश से विरक्त रहना और वन के वृक्षों तथा पशुओं से मिलना चाहिए। 'मैं' और 'मेरा' जबान पर भी न आये, ऐसी स्थिति जिनकी है, वे सच्चे साधुजन हैं।

सारा जगत् हमारा देव है। लेकिन जो बुरे स्वभाव के हैं, उनको मैं धिक्कारता हूं। वे काल के मुंह में पड़ेंगे। उनके हित के लिए मैं छटपटाता हूं। हमारा कोई सखा नहीं, कोई शत्रु नहीं, हम सरल वाणी से बोलते हैं, मगर जिसमें दोष हैं, उसे वह मर्मभेदी लगता है।

हम हाथ में वीणा और करताल लेकर हरि-चिन्तन में नाचें, यही सुलभ रहस्य हमको संतों ने बतलाया है। इस कीर्त्तन में होनेवाले ब्रह्मरस पर समाधि का सुख न्योछावर कर डालो। इस ब्रह्मरस-पान से हमारे चित्त में संशय उत्पन्न नहीं होता, चारों मुक्तियां हम हरिदासों की दासियां हो जाती हैं। मन इससे विश्रांति पाता है, और त्रिविध-ताप क्षणमात्र में नाश होता है।

हे देव, मान-अपमान तेरी क्षुल्लक संपत्ति है। जिन्हें इंद्रियों ने दीन बना दिया है, जो तेरी क्षुल्लक संपत्ति का शौक रखते हों, उन्हें भले तू मूर्ख बनाता रहा। तू ऋद्धि-सिद्धि देगा, मगर उसे स्वीकार कर लें, ऐसे मूर्ख हम नहीं। अरे ठग, तूने बहुत-से ऐसे लोगों को फंसाया है।

जो देह से उदास हैं और जो आश-पाश का निवारण कर चुके हैं, उन्हें भक्त समझना। नारायण ही उनका एक विषय है। उन्हें जन-धन, माता-पिता पसंद नहीं आते। ऐसे भक्तों के निर्वाण के समय गोविन्द आगे-पीछे रह-कर उनका रक्षण करता है। कोई संकट नहीं आने देता। सत्कर्म में सबकी

सहायता करनी चाहिए। उसमें भय माना तो नरक जाना पड़ता है।

भगवान की ओर द्रुतगति से जानेवाला शुद्ध और धन्य है। परमार्थ का ज्ञान सुनकर जिसके मन में उसका परिपाक होता है, हरिप्रेम जिसके हृदय में हिलोरें लेता है, और स्वहित के लिए जागृत रहता है, ऐसा व्यक्ति ही देव है।

परोपकारी व्यक्ति विशुद्ध गुणों की राशि है। देव उसके अधीन है। उसका धैर्य कभी भंग नहीं होता।

निष्ठावन्त भाव भक्तों का स्वधर्म है। इस निश्चित मर्म से न चूको। भगवान में निष्काम, निश्चल विश्वास रखो। दूसरे और किसीका आसरा न टटोलो। ऐसे अनन्य भक्त की किसने उपेक्षा की है ?

नित्य नाम लेनेवाले की चरणरज लेने की देव इच्छा रखता है और उसे पाने के लिए वह उसके पीछे-पीछे दौड़ता-फिरता है। जिसके कंठ में बैकुण्ठ-नायक हैं, उसमें और देव में क्या कोई अन्तर है ?

हरिदास की भेंट होने पर पाप, ताप, दैन्य तत्काल चले जाते हैं। नाम-संकीर्त्तन में जो आनन्द-मस्त होकर नाचता है, महादेव उसकी चरणरज की वन्दना करते हैं।

जो भगवान को नित्य भजता है, वही पंडित है। जो सर्वत्र समब्रह्म देखता है, सब जीवों में राम को देखता है, वही प्रभु का सच्चा दास है। उसके दर्शन करने से दोष जाते हैं।

जिसकी संपूर्ण वासनाएं नष्ट हो गई हैं, उन्हें ही ब्रह्मरस की मिठास की प्राप्ति होती है। जो सारे भेदभाव की संलग्नता से नितान्त मुक्त होकर, बाह्यज्ञान की उपाधि से रहित होकर, निज स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने बै

हैं, जिनका मन एक परमात्मा में स्थिर हो गया है, उन्हें निजात्म-सुख की क्या कमी है ? जो स्त्री-पुरुषों को परमार्थ का भान कराते हैं, वे ही पुण्यवंत और परोपकारी हैं। मैं उनके यहां उनका पायन्दाज़ बनकर पड़ा रहूं।

हम हरि के दासों को त्रिलोक में कोई भय नहीं, क्योंकि हमें संक ों से छुड़ाने के लिए वह हमारे आगे-पीछे खड़ा है। हम अपने भावों से उसे जैसा बनायें, वह वैसा बनता है और भक्तों का काम करने के लिए वह ैड़ता आता है। मैं मुख से विट्ठल को गाऊं, और निरन्तर उसी सुख में रहूं।

वैष्णवों में मुक्ति का दारिद्रय नहीं और वे संसार की ओर भी नहीं देखते। गोविन्द उनके चित्त में डटकर बैठा है। आदि, मध्य, अवसान में वही है। उन्होंने अपना सर्व भोग नारायण के अर्पण कर दिया है, और वे उसीका नित्य मंगल-गान करते हैं

उनका बल, बुद्धि परोपकार के ही लिए है।. उन्होंने नामामृत से पेट भर लिया है। वे देव सरीखे ही दयावन्त हैं। वे अपना-पराया नहीं देखते। उनका जीव ही देव है। जहां वे रहते हैं, वहीं बैकुण्ठ है।

जिसके चित्त में अहंकार नहीं और प्रपंच का त्रास नहीं, वही त्यागी है। यदि त्यक्त वस्तु का ध्यान रहा तो यह सब विडम्बना है। भले-बुरे का आप स्वयं विचार करें, बतानेवाला और कौन मिलेगा ?

जिनको हरि प्रिय है, वह पुरुष हो अथवा स्त्री, मुझे भगवान् के समान है। उस भक्त को मैं प्रेम से नमस्कार करूँगा। जिसका अन्तःकरण निर्मल है, उसीका अन्तर्बाह्य कोमल है। उसीकी संगति में मेरा सब समय जाय तो इस समय की प्रत्येक घड़ी मेरे लिए मंगलरूप है। मैं अपनी जान उसपर न्योछावर कर दूं।

हरि के दासों को भय है, ऐसा कोई न कहो। भगवान उनके सामने खड़े होकर उनकी इच्छाएं पूर्ण करते हैं। हरि के दासों को किसी भी प्रकार

की चिन्ता हो, यह असंभव है। भगवान उनको अन्न-वस्त्र, आदि सब-कुछ दे देते हैं।

हरि के दासों के यहां हमेशा सुख का कल्लोल होता रहता है। जहां हरि के दास बसते हैं, वहां पुण्य फलते हैं और पापों का नाश होता है। नारायण उनके रक्षण के लिए सुदर्शन लिये फिरते हैं। हरि के दासों के यहां काम करने के लिए देव सेवक बनकर रहता है।

हमारा स्वदेश तो त्रिलोक है। हमारी निगाह में कोई दुष्ट नहीं है। हममें और दूसरों में भेद नहीं है। हरिनाम ही हमारा धाम है।

जिस प्रकार बालक का सब बोझा मां पर होता है, उसी प्रकार मेरा सारा बोझा तुम संतों पर है।

वही पवित्र है जो विकल्प की जड़ उखाड़ फेंकता है। जो बाहरी ठाठ दिखाते हैं, वे गन्दगी से भरे हुए हैं। जिसकी बुद्धि त्रिकाल सावधान है, वही आत्माराधन कर सकता है। जो संदेहग्रस्त हैं, वे प्रकृति के बंधन में हैं। जो समबुद्धि समाधानरूप है, वही अखंड ध्यान सच्चा है। अपना चित्त और वित्त उसके हवाले कर दो।

जैसे आकाश सर्वत्र संपूर्ण है, वैसे ही संतों को समझो—गंगाजल, अमृत, सूर्य, हीरा, कपूर और चिन्तामणि की तरह विशुद्ध।

भक्तिमान के आगे बलवान का भी बल नहीं चलता। उसका बल राम है। वह भक्त जहां बैठेगा, वहां सर्वशक्ति विना बुलाये आती है। वह कहीं भी रहे, उसकी ओर कौन बुरी निगाह से देख सकता है ?

श्रद्धावान भोले भक्त की स्थिति कभी नहीं बदलती। शेष अपना पुण्य क्षय हो जाने पर भ्रष्ट हो जाते हैं। केवल विष्णुदास ही गर्भवास के दुःख को नहीं जानते। विठोबा का नाम ही अच्छा और सच्चा है।

भक्तजन जैसी इच्छा करते हैं, देव वैसे ही नाचता है और उस देव के सुकुमार चरणों का वे वन्दन करते हैं। भक्ति की अभिलाषा में वे मुक्ति को भूल जाते हैं। जिसे मांगने की इच्छा नहीं है, भगवान् उसका साथ नहीं छोड़ते।

जो कोई मांगते नहीं, उन्हींकी सेवा करने के लिए देव दौड़ता है। वह दीन रूप धारण करके भक्त की सेवा का ऋण धीरे-धीरे उसीकी सेवा करके चुकाता है। उन भक्तों से वह एक क्षण भी अलग नहीं रह सकता। सचमुच, जिसमें भक्ति-भाव है, वह देव का भी देव है।

हरिभक्तों के यहां मोक्ष और सिद्धियां दासियां बनकर रहती हैं।

जो मन, वचन, काया से भगवान के दास हो गए हैं, उन्हें काम-क्रोध की बाधा नहीं होती। जो स्वामी पर विश्वास रखता है, वह उसपर अपनी सत्ता चलाता है और उसके समस्त ऐश्वर्य का भोक्ता बनता है। हम अपना चित्त निर्मल कर लेंगे तो वहां गोपाल आकर रहने लगेंगे।

जो अर्थ, देह, प्राण सबकुछ छोड़ दे, वही हरि को जीत सकता है। मोह, ममता, माया, चिन्ता छोड़कर विषयासक्ति को जला डालना चाहिए। लोक-लाज, अभिमान, मत्सर का नाश कर देना चाहिए। शांति, क्षमा, दया से मित्रता कर उन्हें भगवान को बुलाने सविनय भेजना चाहिए। अपनी जाति और विद्वत्ता का अभिमान छोड़कर संतों की शरण जाना चाहिए।

जो किसीसे कुछ नहीं मांगता, वही देव को प्रिय लगता है। उसीको देव समझना चाहिए और उसके चरणों में लीन रहना चाहिए। जिसके मन में भूतदया है, उसके घर चक्रपाणि रहता है। मैं निश्चयपूर्वक कहता हूं कि उसके समान कोई नहीं है।

जो संतों की सेवा करने में जी चुराता है, उसकी ओर मेरी दृष्टि न पड़े।

जो संतों के चरणों में अपना भाव रखता है, उससे भगवान् अपने-आप आकर मिलते हैं।

साधक की दशा उदास होनी चाहिए। अन्तर्बाह्य कोई उपाधि नहीं होनी चाहिए। वह लोलुपता छोड़े, निद्रा को जीते और भोजन परिमित करे। एकान्त में अथवा लोकान्त में प्राणों पर आ बनने पर भी स्त्रियों से न बोले। ऐसा साधक ही गुरु-कृपा से ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

संसार की तमाम माया देव को अर्पण करके जो कोई उसकी भक्ति करेगा, उसकी भक्ति देव को अत्यंत प्रिय लगेगी। प्रारब्धानुसार परमात्मा जिसको जिस स्थिति में रखे, उसमें समतापूर्वक रहना चाहिए। मैं तो अपने योग-क्षेम का सारा भार देव के सिर पर डाल दूंगा और अपना तमाम संसार उसके चरणों में समर्पित कर दूंगा।

जो देव की अनन्य भाव से शरण लेते हैं, उन्हें उत्तम जाति के जानना। जो हरि के शरणागत हुए हैं, उनके हृदय में हरि का स्वरूप लबालब भर गया है, और फिर छलक पड़ता है—उसमें ब्रह्मानुभव की झलक दिखाई देने लगती है।

हरि के भक्तों को अपने मन में भय तो लेशमात्र भी नहीं रखना चाहिए। कारण कि जिनके नारायण सरीखा सखा है, उनके निकट संसार का मूल्य क्या है? हम अपने मन को हमेशा संतोष-अवस्था में रखें।

वैराग्य का उदय सत्संगति में रहने से होता है। सन्त साधकों को अपने संसर्ग से निष्पाप बना देते हैं।

सज्जनों के दर्शन में शुभ वचन सुनने को मिलते हैं। वे धर्म-नीति का प्रतिपादन करते हैं। उनके प्रति क्रोध रखने से हित नहीं होता। अत्यंत मृदु रहना ही अच्छा होता है।

मेरे मन को प्रिय लगें.ऐसे मेरे सच्चे संबंधी तो हरि-भक्त ही हैं। निर्धन रहना ही उनका अहोभाग्य है। उनका धैर्य कभी भंग नहीं होता। जब उन्हें भूख-प्यास लगती है, तब भी वे अपने चित्त में देव का ही स्मरण करते हैं। नारायण ही उनका धन है।

जो सच्चे कुलीन होते हैं, वे अपने मन की ऊंची स्थिति से कभी नहीं डिगते। उनके हृदय में जो भाव होता है, उसको वे अपने बाह्य आचरण में प्रकट करते हैं। उनका विचार और बर्ताव एक होता है। उनमें अपवित्रता का दाग कभी नहीं लगता। उनके रस में भंग कभी नहीं पड़ता। हीरा घन की चोट से नहीं फूटता।

जिन्होंने परमार्थ के रास्ते प्रयाण कर दिया है, जो आ पड़नेवाले आघातों को सहन करने का मनोबल रखते हैं, वे ही सच्चे शूरवीर हैं।

जो अपने चित्त को शुद्ध भाव से देव के अर्पण करके उसकी शरण में जाते हैं, वे देव के समस्त प्रकार के वैभव के मालिक हो जाते हैं। देव उन्हें अपने से दूर रखता ही नहीं है।

संतों द्वारा आप मुझे अंगीकृत करा दें, तो फिर ब्रह्मज्ञान गिड़गिड़ाता हुआ चला जायगा, परन्तु भगवान के भक्त उसे ग्रहण करने की ज्यादा उतावली नहीं करते। वे सन्त ब्रह्मज्ञान से अलग भागते-फिरते हैं और ब्रह्मज्ञान उनके घर में जबर्दस्ती घुस जाना चाहता है। जो ब्रह्मज्ञान अति प्रयत्न करने पर भी नहीं मिलता, वह उदासीन वृत्तिवालों के गले पड़ता जाता है।

जिसके अन्तःकरण में देव का वास हुआ, उसके संसार के ऊपर तो पत्थर पड़ गए समझो। देव उसके सर्वस्व का नाश करके उसे अपनेसे अलग नहीं रहने देता। उसकी वाणी को देव असत्य, आदि गंदगी में नहीं पड़ने देता। जिसको देव की संगति हुई, उसका मनुष्यपना गया। देव उसे किसी प्रकार की आशा या ममता के पाश में धने नहीं देता। जिसे देव की प्राप्ति हो गई है, वह ऐसा

सुवक्ता हो जाता है कि सारे जगत को अपने वश में कर लेता है। ये सब देव-प्राप्ति के लक्षण हैं।

जिसका चित्त हमेशा संतुष्ट और निर्मल रहे, और जो योग्य प्रसंग को तथा योग्य काल को पहचानता हो, उसे सन्त जानना।

मैं वन में जाकर रहूंगा और जिन-जिन वृक्षों के पत्ते खाने-योग्य होंगे उन्हें तोड़कर खाऊंगा। शेष सारे समय विट्ठल का चिन्तन किया करूंगा। वृक्षों की छाल का वल्कल बनाऊंगा और इस प्रकार देहाभिमान को जला डालूंगा। प्रतिष्ठा को वमन (उल्टी) के समान समझकर विट्ठल प्राप्ति के लिए एकान्त सेवन करूंगा। जहांतक हो सके, मैं प्रपंच के ति प्रेम नहीं रखूंगा और अरण्यादि स्थलों में रहकर एकान्तवास का अभ्यास करूंगा। जिसका ऐसा निश्चय है उसके प्रापंचिक दुःख-दारिद्रय का नाश हो जाता है।

जिसने यत्नपूर्वक उपाधियों का नाश कर दिया हो, उसने स्वबल से देव को हस्तगत कर लिया समझना, जिसने धन और जन का त्याग कर दिया हो, वह स्वयं जनार्दन रूप हो गया है। इसमें उतावली काम नहीं देती। इसके रस की प्रतीति अन्तरंग के अनुभव से होती है।

हरिभक्तों को किसी भी प्रकार का भय तो होता ही नहीं। उन्हें कोई चिन्ता भी नहीं होती, क्योंकि भगवान उनके समस्त दुःखों का निवारण करते रहते हैं। प्रभु उनके शरीर से दुःख-दारिद्र्य का स्पर्श भी नहीं होने देते। जो समस्त जगत् में व्यापक है, वही एक विश्वम्भर मेरा सखा हो गया है।

जिस दिन मुझे हरिभक्तों का दर्शन होता है वह दिन मुझे दिवाली-दशहरा के समान है।

भक्त जो कुछ बोलता है उस तरफ भगवान ध्यान देते हैं। भगवान् अपने भक्तों की भक्ति से बंध गये हैं।

वेदों में ईश्वर के विषय में असीम लिखा है। सार इतना ही है कि भगवान की शरण जाना और निष्ठापूर्वक उसका नाम लेना। अठारह पुराणों का भी यही सिद्धान्त है।

सच्चे सन्त काम-क्रोधादि का अपने हृदय से स्पर्श भी नहीं होने देते।

जिसके मन में हरिनाम बस गया है अकेला वही तरता है, और सब उसकी वन्दना करते हैं।

अन्तर में दयाभाव रखकर लोकोपकार करना ही जिसका कुलधर्म हो, उसके हाथ में सब साधनों का सार आ गया समझना।

जिन्होंने सबकुछ त्याग दिया, वे तो सदा के लिए सुखी हो गए। अग्नि को किसी प्रकार की अपवित्रता नहीं छूती। सत्यभाषी लोग सांसारिक काम करते हुए भी संसार से अलिप्त रहते हैं। परोपकारी में आत्मस्थिति का उदय हुआ समझना। जो पर-गुण-दोष-विषयक टीकाएं न तो करता है और न सुनता है, वह जगत् में रहते हुए भी जगत् से अलग रहता है। परमार्थ प्राप्ति का सच्चा मर्म समझे बिना सारा परिश्रम व्यर्थ है।

जिसमें वास्तविक ब्राह्मी-स्थिति का उदय हुआ है, उससे तो एक तिनका भी नहीं टूटता, तो फिर जीव का वध तो कर ही किस प्रकार सकता है?

जिनके संसर्ग से प्रेम में वृद्धि हो, प्रेम हो तो दूना हो जाय, उन्हें ही मैं सन्त कहता हूं; और जिनके संसर्ग में आने से ईश-प्रेम घट जाय, उन्हें मैं दुर्जन और काल-मुख कहता हूं।

परमार्थ-फल का सेवन करनेवाला कभी किसीके साथ वाद-विवाद में नहीं उतरता।

सन्तों की संगति ही सुख है । भूतमात्र में परमात्मा समान रूप से व्याप्त है, फिर भी विषमता को सच मान लेना ही दुःख है ।

जिस प्रकार कठोर श्रम करनेवाले किसान की अच्छी-से-अच्छी फसल होती है, उसी तरह जो परिश्रम उठाकर भजन करता है, उसे ही हरि की प्राप्ति होती है । अपना हित करना-न-करना आपके हाथ में है ।

जो एक बार भी हरि को जीत ले उसका सुख सबसे अधिक समझना ।

जिन्होंने अपना तन, मन और धन श्रीहरि को समर्पित किया होता है, उन्हींके पास वह रहना पसन्द करता है । जो हरि की कीर्ति का वर्णन करते हैं, वे समर्थ हैं । शेष सब, चाहे वे चक्रवर्ती हों, कंगाल और दयापात्र हैं ।

ब्रज के ग्वाले भक्त और निरभिमानी थे, इसीलिए उनको देव की प्राप्ति हुई ।

जो भगवान को नहीं भूलते वे ही सचमुच उदार और दानवीर हैं । इससे उनकी कीर्ति सर्वत्र फैल जाती है ।

हरिनाम-स्मरण करनेवाले अविनाशी-पद को पाते हैं और उन्हें सब प्रकार के सुख की प्राप्ति होती है । सब सुख का अनुभव उनके अन्तःकरण में होता रहे, तो फिर उन्हें बाहरी सुखों की दरकार भी क्यों रहे ?

चाहे दुराचारी हो, मगर जो वाचा से हरि का नाम लेता है तो मैं मन-वचन-शरीर से उसका दास हूं । हरि के गुण गाने में चित्त में भाव न हो तो भी कोई आपत्ति नहीं । जो अनाचार करता है, मगर वाचा से हरि के नाम का उच्चार करता है, अपनेको हरि का दास कहता है, वह धन्य है—चाहे शुद्ध कुल का हो या चांडाल घराने का ।

बुरे कुलवाले लोग भी अनुतापपूर्वक हरि-स्मरण करने से मुक्त हो गए ।

हरिभक्तिरहित बड़प्पन को आग लगे। दुर्जन मुझे दिखाई न दे। अभक्त ब्राह्मण मानो रांड़ का पुत्र है। उसका मुंह जल जाय। चमार वैष्णव हो तो उसकी मां धन्य है। उसके दोनों कुल पवित्र हैं। यह तो पुराणों ने ही कह रखा है, मैं अपनी तरफ से नहीं कह रहा हूं।

जाति और कुल की देव को कोई कीमत नहीं होती। जो कोई उसका अनन्य भक्त होकर रहता है, उसके साथ वह भी अनन्य भाव से वर्तन करता है।

: ४ :

भगवान और उसकी भक्ति

एक भगवान के सिवा और किसीकी स्तुति करना हमारे लिए ब्रह्म-हत्या के समान है। हम विष्णुदासों का एकविध भाव है। हम दूसरे को देव कभी नहीं कहनेवाले। अगर स वचन से पलटूं, तो मेरी जबान शतखंड हो जाय। अगर मन में किसी अन्य देव का संकल्प लाऊं, तो मुझे जग के सब पाप लगें।

संतों का अतिक्रम करके देवपूजा करना अधर्म है। देव को सुनाये गए मंत्र और चढ़ाये गए पुष्प, देव के सिर पर मारे गए पत्थरों के समान हैं। यदि कोई अतिथि को त्यागता है और देवके लिए नैवेद्य तैयार करता है, तो ऐसी भेद-बुद्धि से की गई देव की सेवा सेवा नहीं, ताड़ना है।

संतों की सेवा करनी चाहिए। कारण, वह देव को पहुंचती है। उससे सब कार्यों की सिद्धि होती है। भक्त देव के ही अंग हैं। धर्म का मर्म यही है।

भगवान् का आश्रय लेने पर तुम्हें मुक्ति की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। तब तुम्हारे अन्दर दैन्य-दारिद्र्य भी नहीं रहेगा।

देव मेरे आगे-आगे रहकर सारे भोग भोगता है। मैं सब कर्तृत्व-भोक्तृत्वरहित होकर यों ही बैठा हूं। आजतक मेरे पीछे लगे हुए शुभाशुभ कर्मों के सुख-दुःख का निरसन 'करने और भोगनेवाला देव ही है,' इस ज्ञान से होगया।

'जीव और शिव' का खेल कर्ता ने लीला से ही किया है। सारा आभास

अनित्य है। सचमुच तो जगत् विष्णुमय है। वर्णधर्म खेल है। सबकुछ एक-ही से बना है, उसमें भिन्न-अभिन्न का व्यवहार कैसा? यह निर्णय साक्षात वेद-पुरुष नारायण ने किया है। उसी प्रसाद का रसानन्द मुझे प्राप्त हुआ है। इसलिए भगवान के चरणों के पास ही मेरा वास होगा। उनसे मैं कभी जुदा न होऊंगा।

नारायण की कृपा से विषवत् दुःख अमृतवत् सुख समान हो जाता है।

शक्तिमान हरि के सेवक होने से हम भी शक्तिमान हो गए हैं। संसार को लात मार दी। काम-क्रोधादिक छहों ऊर्मियों को नष्ट कर दिया। जन, धन, तन को तृणवत् कर दिया। अब हम मुक्ति के मस्तक पर हैं।

इस कलियुग में दूसरा उपाय नहीं चलता। भगवान के चरणों की ही शरण गहनी चाहिए। उसीके पेट में सब पुण्य हैं, और उसीसे सब पापों का नाश होता है। उसे लेने के लिए समय और काल देखने की आवश्यकता नहीं, न किसी त्याग की।

खाने को न मिले; सन्तान न बढ़े; मगर नारायण की मुझपर कृपा रहे। मेरी वाणी मुझे ऐसा उपदेश करती रहे और दूसरे लोगों से भी यही कहती रहे। शरीर की विडम्बना हो या विपत्ति आवे, मगर मेरे चित्त में नारायण रहें। यह सब प्रपंच नाशवंत है, इसलिए गोपाल को हमेशा स्मरण करने में ही हित है।

भाव ही भगवान है।

जहां-जहां जो-जो भोग प्राप्त हों, वे सब हरि ही भोगता है, ऐसा समझ कर हरि की सेवा में समर्पण करना चाहिए। इसीको सहज पूजा कहते हैं। निरभिमान रहना चाहिए। जीव ने कर्तृत्व-भोक्तृत्व का अभिमान न रखा तो देव उससे अलग नहीं

आगे-पीछे, अन्दर-बाहर, सर्वत्र अगर देव ही है तो हरि के दास को भय किसका ? देव के पास काल का बल नहीं चलता। उस धनी के यहां कमी किस बात की है ?

देव अपने एकनिष्ठ भक्त का भार अपने सिर पर लेकर उनके योग-क्षेम की चिन्ता रखता है। अगर भक्त मार्ग से भटका, तो वह उसका हाथ पकड़-कर सरल मार्ग दिखा देता है।

एक भगवान के चिन्तन से क्या नहीं होता ? भगवान का चिंतन सर्व-साधनों का सार है और वह भवसिंधु से पार उतारनेवाला है।

जिस पद की हम इच्छा करेंगे, भगवान हमें उस जगह ले जाकर पहुंचा देगा। उसका चिन्तन करें तो वह चित्त को अपने स्वरूप से ओतप्रोत कर देता है। इच्छित फल की प्राप्ति के लिए शरीर में भगवच्चिन्तन का बल चाहिए। तब सिद्धि उसकी चरण-सेवा करती है।

भगवान की चाकरी करने से इच्छा पूर्ण होती है और आत्मा को अपना परम पद प्राप्त होता है।

भगवान ही मेरा देव और भगवान ही मेरा गुरु हो गया है। वह मेरी अभिलाषाएं पूर्ण करता है और अन्त में अपने पास बुला लेता है। भक्तों के पीछे-आगे खड़ा रहकर वह उन्हें संभालता है, और उनपर आनेवाले संकटों को दूर करता है और उन्हें योग-क्षेम देता है। उन्हें रास्ता दिखलाकर मोक्ष-मार्ग पर लगाता है।

बहुत-से विद्वान तर्कशास्त्री होते हैं, मगर भगवान का पार उन्हें नहीं मिलता। बहुत-से पाठ-पाठान्तर करने से और अर्थों का विचार करने से भी भगवान की महत्ता उन्हें नहीं अनुभूत होती। भोलेपन के बिना भगवान का लाभ नहीं होनेवाला। ज्ञान के माप से उसे कितना ही मापो, व्यर्थ जायगा।

धीरज धरने से नारायण सहायक होता है। वह अपने दासों पर श्रम नहीं पड़ने देता, और चिन्ता भी नहीं करने देता। हम आनन्द से कीर्त्तन करें और हरि के गुण गायें।

संचित कर्म जल सकते हैं। भगवान के चिन्तन से पापमल तथा ताप-जाल नहीं रहने पाता।

भगवान का ध्यान अन्तःकरण में करना, यही उसका मुख्य पूजन है। इसके अलावा सब उपाधियां पाप हैं। सहज स्वरूप स्थिति ऐसी स्थिति है जिससे कभी जी नहीं ऊबता।

ज्ञान की बातें कहना भी कठिन है, तो हृदय में अनुभव कैसे आ सकता है? इसलिए अज्ञ जीव अगर हरिभजन और हरिकथा में सम्यक् प्रकार से चित्त लगायें, तो उनके दुःख का परिहार होगा। वन में जाने से समाधान नहीं होता।

उदर-पोषण के योग्य काम करना चाहिए, परन्तु विशेष आत्मीयता तो नाम की ही रहे। चित्त में भगवान का ध्यान धरने का ही काम करें। देव की सेवा में जुड़ जाने की ही भावना भाग्यवानों को करनी चाहिए और यह सारी बल-बुद्धि खर्च करके करनी चाहिए।

भगवान का नाम लेकर भीख मांगना लज्जास्पद है। ऐसा जीवन नष्ट हो जाय। भगवान ऐसे लोगों की हमेशा उपेक्षा ही करते हैं। देव के प्रति भक्ति-भाव हुए बिना, जीव को हरि के समर्पण किये बिना, बाहरी भक्ति दिखलाना व्यभिचारवत् है। विषयेच्छा से दीन होकर दुनिया को बोझिल करना ही अभाग्य है। इसका कारण देव के प्रति अविश्वास है। सच्ची श्रद्धा हो तो विश्वम्भर क्या-क्या न कर देगा। उसके चरणों को दृढ़ता से पकड़ना ही सार है।

हरिभक्ति के भावबल से हरि के भक्त अविनाशी है। योग, भाग्य, व शक्ति उनके घर चलकर आती है।

हे देव, अगर भक्ति-सुख का अनुभव नहीं आया तो मैं ज्ञान लेकर क्या करूं ?

अब देव के अतिरिक्त मुझे कुछ नहीं बोलना, यही एक नियम कर लिया है। काम क्रोध को देव के अर्पण कर दिया है।

जो हीरा घन की मार से नहीं फूटता, वह अच्छी कीमत से अंगीकार किया जाता है, उसी तरह जो जग के आघात सहन करता है उसको देव अपना बना लेता है।

जहां अपनी मान-प्रतिष्ठा है, वहां अपनी अप्रतिष्ठा करके पंचभूतात्मक नष्ट देह की विडम्बना कर डालनी चाहिए। ऐसा करने से घर-गृहस्थी कैसे रहेगी ? जिसका हरि से प्रेम है वह तद्रूप हो जाता है।

बिना भक्ति का ब्रह्मज्ञान बिना शक्कर के दूध के समान है। बिना नमक के अन्न रुचिकर नहीं होता। अन्धे को कुछ सिखाओ तो वह उसका नाममात्र जानता है। तंबूरे का सार भाग उसके तार हैं।

हम जैसी भावना करते हैं वैसी देव की देन होती है, इसलिए यत्न करने से क्या नहीं हो सकता ? कृपासिंन्धु भगवान् अपने दास की उपेक्षा नहीं करते; वह उसके अन्तर की व्यथा जानते हैं। छोटा बालक मां से मांगना नहीं जानता मगर मां उसके हृदयभाव को जानती है; और उसे किसी तरह का दुःख न हो, ऐसा करती है। मुझे इसका अनुभव है; कोई अन्यथा बोले तो मैं नहीं मान सकता।

यह नारायण जीवों का जीवन है, अमृत स्वरूप है, ब्रह्माण्ड का भूषण

है, सुखद संगतिवाला, और काल का भी काल है। वह निज भक्तों का शरण-स्थान है, माधुरी का माधुर्य, आनन्द का कौतुक और प्रीति का प्यार है। वह प्रभु, भाव का निजभाव और नाम का भी नाम है। वह सव सार-का-सार है।

यदि तू ही नहीं मिला तो कोरे ब्रह्मज्ञान का मैं क्या करूं? ऋद्धि, सिद्धि, शास्त्रनिपुणता तेरे बिना भार है।

हे प्रभो, मैं तेरी चरण-सेवा साधने के लिए जन्म लूं। हरि नाम कीर्त्तन, संतपूजा किया करूं और तेरे दरवाज़े पर लोटा करूं। आनन्द से परिपूर्ण रहकर मैं कहीं भी रहूं। सुख-दुःख की मुझे इच्छा नहीं। न कोई दूसरा उपाय करूं, न आशा रखूं। सब प्रकार से उदासीन रहूं तो जैसा-कहूं-वैसा काम करनेवाली दासी बनकर मोक्ष मेरे घर रहेगा।

ज्ञानावस्था से मैं बहुत डरता हूं। हे नारायण, वह मेरे निकट न आवे। आपके' भक्ति-सुख की समता कर सके ऐसी त्रिलोक में कोई चीज़ नहीं है। अर्ध-निमिष सत्संगति का कल्प के अन्तपर्यन्त बैकुण्ठ में रहने के समान है। सत्संग करनेवाले के पास मोक्ष आदि पद बेचारे विश्रान्ति लेने के लिए आते हैं। मुझे अखण्ड भक्ति दे।

चातक पृथ्वी पर भरे हुए जल की ओर न देखकर प्राणों को कंठ में रखकर मेघ की बाट जोहता है। सूर्य से विकसित होनेवाली कमलिनी चन्द्रामृत न लेकर सूर्योदय की प्रतीक्षा करती है। गाय अपने बच्चे को छोड़ दूसरे बछड़े को अपने पास नहीं आने देती। पतिव्रता को सर्वभाव से अपना पति ही प्रिय होता है। इसी प्रकार एकविध-भाव से धैर्यपूर्वक प्राणोत्सर्ग होने पर भी नियम न छोड़ने का दृढ़ निश्चय हो, तभी मेरे विठोबा की बात छेड़े।

भक्त के अन्तःकरण का भाव देव जानता है और उसे पूर्ण करने का उपाय करता है। कहने-मांगने की जरूरत नहीं है। जी-जान से धैर्यपूर्वक उसका अनुसरण करके अविनाशी फल की प्राप्ति कर लेनी चाहिए। बालक

नहीं मांगता, फिर भी मां उसे बुलाकर भोजन देती है। उस देव का आश्रय लेकर कितने ही पंगुओं ने गिरि पार कर दिये हैं।

अनन्य भक्त अज्ञानी भी हो, देव को अतिशय प्रिय है। उपमन्यु, ध्रुव और प्रह्लाद क्या जानते थे? उनके चित्त में नारायण बसा हुआ था। प्रभु स्वयं भोला भक्त है और हमने उसके चरण पकड़ रखे हैं।

भक्तिपंथ बहुत सरल है; वह पुण्य-पाप रहित है, इसलिए जन्म-मरण नाशक है। भक्तिपथ पर खड़ा हुआ विठोबा हाथ उठाकर बुलाता है और अपने मुंह से कहता है कि भक्तों का सारा भार मैं उठाता हूं। वह अपने भाविक भक्तों को पार उतारता है और कुतर्कियों के सिर फोड़ता है।

हमारा मन धीरज नहीं रखता; वरना भगवान के पास क्या कमी है? हरि पर सब बोझा डालने पर वह दास की उपेक्षा नहीं करता।

द्रव्योपार्जन के लिए हम जैसी चेष्टा करते हैं, वैसी हरि-प्राप्ति के लिए करनी चाहिए।

भगवान के चरण तमाम तीर्थों के उत्पत्ति स्थान हैं और लक्ष्मी जिन का सेवन करती रहती है, सब संत अपने अन्तिम विश्रान्ति-स्थान के रूप में उन्हें ही मांग लेते हैं।

देव को अपना बनाये बिना जीव को सुख नहीं मिलनेवाला। देव के विना सबकुछ मायिक और दुःखद है। उसके प्रारम्भ से अन्ततक दुःख ही भरा हुआ होता है।

लोगों की स्तुति करने से अपने आयुष्य की बरबादी होती है। ऐसा करनेवाला नारायण से विमुख हो जाता है और उसमें से सब प्रकार के

पापों की उत्पत्ति होती है। देव की स्तुति के सिवा कुछ भी सुनने से पाप लगता है।

भगवान को भक्तों की अटपटी वाणी भी अत्यन्त प्रिय लगती है। वह उनकी सम्पूर्ण इच्छाएं पूर्ण कर देता है।

चित्त के मत्सर को दूर करना और सुखरूप होकर रहना यही विश्वम्भर का सच्चा पूजन है।

यश, श्री, औदार्य, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य, इन छह गुणों से युक्त केवल भगवान हैं।

देव के पास मोक्ष की पोटली बंधी हुई नहीं है कि जिसमें से वह मोक्ष निकालकर तुम्हारे हाथ में रख दे। विषयों से मन और इन्द्रियों को खींच लेना और इस प्रकार निर्विषयी हो जाना ही मोक्ष का स्वरूप है।

राम अपने भक्तों के पीछे-पीछे दौड़ते हैं। राम के सेवक उनके गले में रस्सी बांधकर जहां चाहें ले जाते हैं। राम अपने सेवकों को परमार्थ के रास्ते से भटकने नहीं देते। वे कभी असावधानी से गलत रास्ते चले जायं, तो राम उनका हाथ पकड़कर उन्हें परमार्थ के सम्यक्, मार्ग पर लगा देते हैं।

नारायण अपने अनन्य भक्तों की इच्छा रखते हैं, और यदि वे रंक हों तो उनको अपनी पदवी तक देकर निहाल कर देते हैं।

देव का स्वभाव ऐसा है कि जबतक अपना काम पूरा न हो जाय तब-तक स्वयं क्या करना चाहता है, इसकी किसीको खबर तक नहीं होने देता।

नारायण जब कृपा करेंगे तब यह प्रापंचिक ज्ञान ही ब्रह्मरूप बन जायगा। जब देव अपना स्वरूप बता देगा तब जीव-दशा में पड़ा ही नहीं रहा जायगा।

देव को पहचानने का साधन एक भक्ति-भाव ही है। सके सिवा और किसी साधन से उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती।

जिनमें शुद्ध भाव है उनके लिए देव सर्वत्र मौजूद है, और जो भावहीन हैं उनके हाथ वह कभी आनेवाला नहीं। देव-रहित कोई स्थान है ही नहीं, ऐसा जिसका अनुभव हो गया, वह स्वयं देव-रूप हो गया।

नारायण का स्वभाव ऐसा है कि अपने भक्तों के संकट, स्मरण करते ही टाल देते हैं। अनन्त भगवान फल की सिद्धि पर्यन्त अपने भक्तों की मदद करते हैं और उन्हें निर्धारित स्थान तक पहुंचा देते हैं। भक्तों का तो इतना ही कर्त्तव्य है कि सर्वतोभाव से नारायण की शरण लें।

भगवान पूर्णकाम हैं। उनके गुणों में सबसे मुख्य गुण दया है। दया के तो मानों वह समुद्र ही हैं। वह अपने भक्तों को किसी प्रकार का श्रम या कष्ट नहीं करने देते। उनकी उदारता देखें तो स्वयं लक्ष्मी को उनकी दासी पाते हैं; उनकी शूरवीरता देखें तो कलिकाल को उनसे परास्त पाते हैं; चतुर इतने कि सब गुणों की राशि हैं; पागल इतने कि जिसमें भाव देखा कि उसके सेवक बन गए। अपने भक्तों का जूठा खा जाने का उन्हें बड़ा शौक है। वह जीव-मात्र में व्याप्त हैं, फिर भी उन्हें कोई जान नहीं सकता। वह सबसे श्रेष्ठ हैं।

: ५ :

भजन और कीर्त्तन

युक्ताहारादिक किन्हीं साधनों की आवश्यकता नहीं है। तर जाने का अल्प साधन नारायण ने दिखलाया है, वह यह कि कलियुग में कीर्तन करो, उसीसे नारायण मिल जायगा। लौकिक व्यवहार छोड़ने का और वन में जाकर भभूत लगाकर दंड लेने की जरूरत नहीं है। हरि के नाम को छोड़कर सब उपाय व्यर्थ दिखते हैं।

हरि-कीर्त्तन से हरि की कृपा का प्रसाद मिलता है। वह दूर हो तो निकट आ जाता है। मैं यह मर्म तुमको तुरन्त बतलाये देता हूँ कि तुम अपना मन अपने हित के मार्ग में लगाओ।

प्रभु-कीर्त्तन को छोड़कर मैं शांति, क्षमा, दया क्या जानूं ? अमृत के सागर में डूबकर शरीर के प्रति चिन्तित क्यों रहूं ? मुझे जग में रहकर आनन्द है, मैं वन में एकांत-सेवन क्यों करूं ? मुझे विश्वास है, भगवान मेरे साथ चलते हैं।

हरि के नाम के गीत जैसे हम गाते हैं उसी तरह उन्हें चित्त में भी रखना चाहिए। यही बड़ा मुश्किल है। अन्न देखने से भूख नहीं मिटती। हरि की कथा चित्त में रखने के लिए ही सुनी जाती ह। खाये बिना भूख नहीं मिटती।

जो देव तप, व्रत, दानादि, बड़े-बड़े साधनों से नहीं मिलता, वह नाम लेने से दौड़ा आता है। जिसके पेट में चौदह भुवन हैं वह भक्त के कण्ठ में रहता है। श्रीहरि भक्तों का ऋणी है। उसे शास्त्रों-पुराणों या योगियों के

ध्यान में नहीं पाया जा सकता। वह तो भक्तों के कीर्त्तन में आकर आनन्द से नाचता है।

हरि-कथा देव-ध्यान ही है। कथा सर्वोत्तम साधन है। कथा सरीखा पुण्य नहीं है। भावसहित नारायण का नाम लेने से एक क्षण में महादोष जल जाते हैं।

जो भाव से कीर्त्तन करता है, वह स्वयं तरकर औरों को तिराता है और नारायण से जा मिलता है, इसमें संशय नहीं।

जो पवित्र हरिकथा को सादर गायेंगे-सुनेंगे, उनके दोषों के पहाड़ जल जायंगे। हरिभक्तों के पास समस्त तीर्थ पवित्र होने के लिए आते हैं, और सर्व पर्वकाल उनके पैरों तले रहते हैं। हरिकथा का माहात्म्य अनुपम है। ब्रह्मा भी उसके सुख का वर्णन नहीं कर सकता।

जो कोई करताल, मृदंग आदि लेकर प्रेम भरे अन्तःकरण से हरिनाम कीर्त्तन करता हुआ गाता-नाचता है उसे तद्रूप ही समझना चाहिए।

हरि-भजन सरीखा आनन्द तो स्वर्ग में भी नहीं है। हरिनाम-स्मरण करने से चारों प्रकार की मुक्तियों की प्राप्ति होती है।

यह हरिकथा समस्त त्रैलोक्य में ब्रह्मरस के रूप में भरी है। विष्णु भगवान उसे हाथ जोड़ रहे हैं; शिवजी उसकी चरणरज को नमस्कार कर माथे पर चढ़ा रहे हैं। उस हरिकथा ने कलिकाल को बन्दी-गृह में डाल रखा है।

जो कोई हरि-कथा गायगा, उसे संसार के दुःखों का स्पर्श भी नहीं होनेवाला। उसके लिए तो सारा संसार ही सुखरूप हो जायगा।

हरिनाम-स्मरण से पाप क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं। श्रीहरिनाम संकीर्त्तन की जहां गर्जना होती है, वहां सब पाप जल जाते हैं।

जप-तप आदि साधन करने से जिसकी प्राप्ति नहीं होती, वह हरि हमको उसके गुण गाने से मिल गया है ।

राम-भजन करने में ही जीवन की सार्थकता है । राम के सिवा सब मिथ्या है । राम के सिवा शेष सब नाशवंत है । राम के नाम के सिवा और किसीमें कुछ सार नहीं है ।

अन्य समस्त मीठे रस किस काम के ? उनसे इस विकारी देह का ही रक्षण होता है । परन्तु राम का भजन करते हुए सूखी रोटी खायें तो भी वह दूध, शक्कर, मक्खन सरीखा स्वाद और पुष्टि देती है ।

हरि-कीत्तन करनेवालों को उदर-पोषण की एवं तरणोपाय की कोई चिंता करनी ही नहीं चाहिए; कारण कि इन दोनों बातों का दायित्व देव ने अपने सिर कभी का ले रखा है । देव अपने पीताम्बर से भक्तों का रास्ता साफ करता चलता है । वह अपने भक्तों के घर उनका दासत्व करता रहता है । जिन्होंने मन, वाणी, और शरीर द्वारा अपना तमाम भाव देव को समर्पित कर दिया है, उनका सारा भार देव अपने ऊपर लेता है और उनका सारा व्यवहार निभाता है । हाल की बियाई हुई गाय जैसे अपने बछड़े की ओर दौड़ती है, वैसे ही देव अपने भक्त की मदद को दौड़ता है । 'मुझे देव की प्राप्ति होनी ही चाहिए' ऐसी उत्कंठा जिसमें जागी हो, उसे सच्चा भाग्यवान जानना ।

: ६ :

सगुण-निर्गुण-विचार

देव भक्तों को अपने नज़दीक रखता है और दुर्जनों का संहार करता है। चक्र-गदा-धारी देव का यही धंधा है। निराकार ही साकार हो गया है। जिसकी जैसी इच्छा होती है, भगवान उसे पूरी करते हैं।

शास्त्रों का जो सार और वेदों की जो मूर्ति है, वह हमारा प्राणसखा है। सगुण और निर्गुण जिसके अंग हैं वही हमारे साथ क्रीड़ा करता है।

राम अतिशय प्रेम का भूखा है। इसीका उसके यहां अकाल है।

संतों का अनुभव-सिद्ध ज्ञान शब्दज्ञानियों को स्वीकार नहीं! संत तीव्र सगुण भवित-भाव धरकर तर गए; मगर वह तार्किकों के अनुभव में नहीं आया और उन्होंने सगुण देव का निषेध ही किया।

शुद्धचर्या संत-पूजा है। इसमें धन या वित्त नहीं लगता। सगुण भक्ति के मार्ग से गए तो हमारा विश्रान्ति-स्थान, हरि का सगुण रूप, अपने-आप भक्त को खोजता जाता है।

संतों की संगति से देव को सुख हुआ, इसीलिए वह उनकी सेवा करता है। निर्गुण देव सगुण साकार होकर संतों की पूजा करता है और उनको दण्डवत करता है।

किसी गांव की सीमा बनाने से पृथ्वी के खण्ड नहीं हो जाते। भक्ति के लिए अरूपी परमात्मा हरि व हर के सगुण रूप में आया।

हमें मोक्षपद तुच्छ है। हमें तो भगवत्-चिन्तन के लिए युग-युग में जन्म

लेना है। हमारे लिए देव ने साकार रूप धारण कर लिया है, अब हम उसे निराकार नहीं होने देंगे।

यह सच है कि सब जीवों में देव अवश्य है, परन्तु सगुण देव के साक्षात्कार के बिना कोई नहीं तर सकता। सबमें ज्ञान है, परन्तु भक्ति के बिना वह ब्रह्म नहीं हो सकता।

देव पाषाण का है और जिस सीढ़ी पर खड़े होकर उसकी पूजा करनी है वह भी पत्थर की है। भाव ही सार है। जिन्होंने इसका अनुभव किया है, वे स्वयं भगवान हो गए हैं।

ईश्वर सर्वभाव से भक्तों के समागम में रहता है और कहे बिना उनके सब काम करता है। वह उनके हृदय-संपुट में रहता है और छोटे-से सगुण आकार में बाहर उनके सामने खड़ा रहता है। भक्त कुछ मांगेंगे इस आशा में वह उनके मुंह की ओर देखता रहता है और उनके मनोरथों को तत्काल पूरा करता है। परन्तु भक्त अपना जीव-भाव देव के चरणों में अर्पण करके कुछ भी नहीं मांगते।

जिन्होंने देव को निराकार अवस्था से साकार अवस्था में लाकर रख दिया है, उनको देव का बाप जानना। देव और उसके भक्त परस्पर बड़े ही निकट संबंध से जुड़े हुए हैं।

देव कहता है कि मैं तुमसे दूर हूं ही नहीं, तुम जैसा भाव मेरे प्रति रखते हो, वैसा ही मैं तुम्हारे प्रति रखता हूं, और उसी रूप से तुमको प्राप्त होता हूं।

मंजीरे होते तो हैं दो, परन्तु उनमें ध्वनि तो एक ही उत्पन्न होती है। उसी प्रकार सगुण और निर्गुण में कोई अन्तर नहीं है।

स्फटिक शिला में अपना कोई रंग नहीं होता; परन्तु वह पृथक्-पृथक् रंगों को धारण करती दिखाई देती है, फिर भी सब रंगों से अलिप्त रहती है।

उसी प्रकार देव सब प्रकार के काम करता है और स्वयं उनसे निर्लेप रहता है। जैसा उसके भक्तों के मन का भाव वैसा वह हो जाता है और उनकी वासनाओं को पूरा करता है।

द्वैत का निरसन होने पर एक हरि ही अवशेष रहता है, तब उसे ढूंढ़ने के लिए बाहर जाने की आवश्यकता नहीं रहती।

अपनी स्वरूप-विस्मृति में सोये हुए जीव, तू मूलतः परमात्मा स्वरूप है। यह आत्मिक दृष्टि के खुलने पर तेरी समझ में आयगा।

समस्त जगत् को विष्णुमय जानना ही वैष्णवों का धर्म है। भेदाभेद मतविचार, केवल अमंगल भ्रम है।

मैंने चर्म-चक्षुओं से न देखकर भी ज्ञान-दृष्टि से सबकुछ देख लिया है। जिह्वा ने जो रस नहीं चखे वे सब आत्म-रसना ने चख लिये हैं। न बोले हुए बोल पारमार्थिक परावाणी ने सब प्रकट कर दिये हैं। स्थूल कानों से जो नहीं सुना, वह तत्व मेरे अन्तर्मुख मन में आ गया है।

(ईश) स्वरूप की याद करने से जीव और स्वरूप दोनों एक हो जाते हैं, उसमें क्षणभर का भी वियोग नहीं होता। सारा ब्रह्माण्ड परमात्मा का स्वरूप है ऐसी भावना ही पूजा है। भगवान को एकदेशीय मानकर पूजना व्यर्थ है।

'सर्वत्र मैं ही भरा हुआ हूं'—भगवान ने अपने स्वरूप की यह पहचान करा दी है। इसलिए मैं उसके स्वरूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता। मेरी स्थिति और मति देव से पृथक् नहीं है।

भगवान जिसका सखा है, उसपर सारी दुनिया कृपा करती है। ऐसा सबका अनुभव होने पर भी हरि की कृपा संपादन न करके सब जीव विषयों

के लिए ही तिलमिलाते रहते हैं। देव जिसकी रक्षा करता है, उसे अग्नि भी बाधा नहीं पहुंचा सकती।

मैं निःशब्द ब्रह्म का ही प्रतिपादन करता हूं। मैंने देहबुद्धि से मरकर जीवन पाया है। देह से संसार में हूं, आत्मा से नहीं। सब विषय-भोगों का त्याग हो गया। मैं सर्वसंग में रहकर भी निःसंग हूं।

मिठास को जैसे सब गुड़ ही है, वैसे सबकुछ देव ही हो गया है। अन्दर-बाहर देव ही है, फिर किसको भजूं? पानी से तरंग अलग नहीं है। सोने और गहने में सिर्फ नाम का फर्क है, उसी तरह देव में और मुझमें केवल नाम का अन्तर है, वास्तव में दोनों एक हैं।

जीव शिव का मूल स्वरूप जो भेदशून्य परब्रह्म है, वहां जीव शिव की समरसता है। जीव और परमात्मा मूलतः एक हैं।

मानसिक पूजा ही भगवान को प्रिय है। कल्पना का वह भोग लेता है। भक्ति का बाहरी-ठाठ-बाट उसे पसन्द नहीं है। भगवान अन्तःकरण के भूत-वर्त्तमान-भविष्यत् के भावों को जानता है।

अगर तू ही विश्व में व्याप्त है, तो मैं तुझसे अलग कहां हूं? अगर अन्दर-बाहर केवल तू ही है तो अन्दर से क्या-क्या निकाल बाहर फेंकूं? और बाहर से क्या-क्या अन्दर डालूं?

निर्गुण से सगुण दर्शन लेने गए तो ऐक्य-भाव में भेद पैदा हो जाता है।

: ७ :

उपदेश

इस प्रपंच-संगति में जो तेरी आयु वृथा गई, उस हानि को तू कैसे पूरी करेगा ? जिन स्त्री-पुत्रों के मोह में तू फंसा हुआ है, वे तुझे प्रयाण के समय छोड़ देंगे। जो उत्तम लाभ है, उसीका विचार कर।

परस्त्री को मां के समान मानने से क्या खर्च होता है ? दूसरे की निन्दा न की और दूसरे के द्रव्य की अभिलाषा न की, तो उसमें तुम्हारा क्या खर्च होता है ? राम-राम कहने से तुमको क्या श्रम होता है ? संतों के वचनों पर विश्वास रखने से तुम्हारा क्या खर्च होता है ? सच बोलने से तुमको क्या कष्ट होता है और तुम्हारा क्या खर्च होता है ? केवल उतने से ही प्रभु की प्राप्ति होती है और कोई झंझट करने की आवश्यकता नहीं है।

जो कर्म किये जाते हैं, वे फलदायक होते ही हैं, इसलिए फलाशा न करो।

पुत्र, पत्नी, बन्धु, आदि से संबंध तोड़ो। यह सब जंजाल लगने लगे, तो फिर उससे संबंध रखकर दोष में लिप्त न होओ। आदमी के मरने पर जैसे हम उसके नाम का मटका फोड़कर उससे निराश हो जाते हैं, उसी तरह इन सबको मरा समझकर इनके नाम के मटके एकसाथ फोड़ डालो। त्याग के बिना भोग कभी पूरा नहीं होता।

जो नारायण के अन्तराय बनें, उन मां-बाप का त्याग कर दो। बाकी के स्त्री, पुत्र, धन किस गिनती में हैं ? वे हमें दुःख देनेवाले शत्रु ही हैं। प्रह्लाद ने अपने पिता का, विभीषण ने अपने बड़े भाई का, भरत ने अपनी

मां और राज्य का त्याग किया। हरि के चरणकमल ही सर्वधर्म हैं; अन्य उपाय दुःख-मूल हैं।

मान-अपमान की गुत्थी खोल डालो। हमेशा समाधान रहना ही देव का दर्शन है। जहां शांति की बस्ती है, वहां कालगति कुंठित हो जाती है। अन्तःकरण में जो-जो ऊर्मियां उठें, उन्हें शांति से सहन करने से परमार्थ सुलभ हो ज़ाता है।

संपूर्ण साधनों का सार यह है कि चित्त में हर्ष-विषाद न हो। अधिक शोध करने की जरूरत नहीं है। सारा प्रपंच झू ा है। देह-अभिमान छोड़ दे।

दुर्जन की गंध दूर से भी आती है। उनसे दूर रहो। उनसे कभी न मिलो न बोलो। दुर्जन के अंग में अटूट गंदगी भरी हुई है। उनकी बोली रजस्वला के स्राव की तरह है। दुर्जनों से पागल कुत्ते की तरह डरते रहो। दुर्जन का अंग-अंग भी अच्छा नहीं। जिस देश में दुर्जन हों, उस देश तक का त्याग कर देना बतलाया है। ज्यादा क्या कहें दुर्जन का शरीर नरक है।

अगर तेरा अन्तःकरण शुद्ध नहीं है, तो काशी और गंगा तेरा क्या कर लेंगी? प्रेम बिना बोलना कुत्ते के भौंकने के समान है।

जिसके चित्त में जैसी वासना होती है, वैसी ही उसकी भावना होती है।

मन को प्रसन्न रखो। यही सब सिद्धियों का आदि-कारण है। मोक्ष, बंधन, सद्गति, अधोगति, सबका मूल कारण मन है। पत्थर की मूर्त्ति में देव की कल्पना मन ही करता है। मन ही इच्छाएं पूर्ण करनेवाला है। मन ही सबकी मां है। किसी व्यक्ति में गुरु की कल्पना मन ही करता है।

नाशवंत अलंकारों से किया गया पूजन क्या सच्चा पूजन है ? यहां सब-कुछ नाशवंत है, लोगों को क्षणिक का लोभ दिखाकर कैसे फंसाऊं ?

शोक से शोक बढ़ता है, इसलिए हिम्मत करके खूब धैर्य धरो। इस जन्म में थोड़ा-सा भी परमार्थ साध लिया तो काफी है।

जिसका जैसा अधिकार है, वैसा उसको मार्ग दिखलाया गया है। चलने से रास्ता मालूम होता जाता है। पार उतरने के बाद नौका को मत जला देना, क्योंकि वह बहुतों का पार उतरने का आधार है।

शांति के परे सुख नहीं है, इसलिए सबको शांति ही धारण करनी चाहिए। इसीसे तुम भवसागर पार कर सकोगे। अगर चित्त में काम-क्रोध खदबदाते रहोगे तो शरीर में आधि-व्याधि पैदा होती रहेगी। शांति धारण की, तो त्रिविध-ताप अपने आप चले जायंगे।

देवार्चन करते समय यदि घर संतजन आयें, तो देव को एक तरफ रखकर संत की पूजा करनी चाहिए।

हे जिह्वे, सिवा भगवान के और कुछ न बोल। सब इंद्रियों से मेरी यही विनती है कि भगवान से विमुख न हों। मेरे कान सिवा उसके नाम के कुछ न सुनें। मेरी आंखें सिवा उसके रूप के कुछ न देखें। हे चित्त, निश्चित, एकविध, और अखंड भाव से भगवान के चरणों में रत रह। हाथ-पैरों चलो और भगवान को नमस्कार करो। भय क्या है ? हमारा पक्षपाती नारायण है।

अर्थी परमार्थ कैसे कर सकता है ? लोभ से चित्त भिखारी हो जाता है।

अपने देहरूपी घर में देव को निरन्तर बसाना चाहिए। इससे बैठते,

सोते, खाते, चलते वक्त उनका संग रहेगा। ससे संकल्प-विकल्प, पुण्य-पाप भी नष्ट होंगे। सब काल भगवान के योग का सुकाल हो जायगा।

अगर पानी निर्मल नहीं है तो साबुन क्या करेगा ? उसी तरह अगर चित्त शुद्ध नहीं है तो बोध क्या करेगा ? वृक्ष पर अगर फल-फूल नहीं आते तो बसन्त ऋतु क्या करेगी ? बांझ के बच्चे नहीं होते तो पति क्या करे ? नपुंसक पति से उसकी स्त्री क्या करे ? प्राण जाने पर शरीर क्या क्रिया करेगा ? पानी के बिना धान्य कैसे पकेगा ?

अभिमान का नष्ट होना ही योग और तप है। करना हो तो यही करो। इसीसे आवागमन नष्ट होगा और देह-भार दूर होगा।

अपना हित करने में देर न कर, क्योंकि काल-सत्ता अपने हाथ में नहीं है। जो अपना हित कर लेता है, वही बुद्धिमान है।

सर्वव्यवहार की ओर एक ही समय तू एक मन को कैसे बांट सकता है ? देह को प्रारब्ध के हवाले कर चित्त में भगवान को दढ़तापूर्वक रख। उसे छोड़कर दूसरी बात से संकल्प की ओर मन को न लगा। तभी तेरा परमार्थ कार्य सिद्ध होगा। इसे भलीभांति जानने से सहज स्थिति की प्रतीति ोगी।

परमार्थ की राह जल्दी ले, नहीं तो दूर पड़ जायगा। कितनी ही खट-पट की, तो भी सार और ही ले जाते हैं। प्रपंच-भार क्यों व्यर्थ सिर पर ढोता है ? जबतक आयु शेष है, तबतक जल्दी कर। अरे ओ बबूचक ! तुझसे परमार्थ का एक भी धक्का सहन नहीं होता तो तू परमार्थ-सुख को कैसे प्राप्त कर लेगा ?

उस रास्ते चलना चाहिए जो कि जहां जाना है, वहां पहुंचा दे। वहां पहुंचने से पहले की बातें वहां पहुंचने पर व्यर्थ हो जाती । मैं जो पैरों

पड़कर बोलता हूं सो सुनो। क्या भक्ति-भाव ही वहां जाने का रास्ता नहीं है? मन में उत्कंठा होनी चाहिए।

तुममें पानी हो तो शूर बनो, वरना सीधे-सादे मजदूर बनकर मजदूरी करो; परन्तु ढोंग न करो।

जिसके अन्तःकरण में संतों के वचनों पर विश्वास हो, उसे उपदेश करने की जरूरत नहीं है।

द्रव्य का काल पीछा कर रहा है, इसीलिए उसका संग करना मिथ्या है। द्रव्य नरक का मूल है। प्रारब्ध से मिलनेवाला दुःख-सुख नहीं टल सकता, इसलिए किसी फल की तृष्णा रखना व्यर्थ है। परमार्थ को सादर श्रवण करो और नित्य टिकनेवाले परमार्थ धन को लेते रहो।

अन्तःकरण में हरि का ध्यान करके सुख से तृप्त हो। मुंह से क्या बड़-बड़ करता है? जबतक अनुभव की मिठास नहीं चखी, तबतक विधि-निषेध की माथा-पच्ची करनी पड़ती है। मौन धारणकर अपनी बुद्धि को स्थिर करो, यही साधन की सिद्धि है।

तुम स्वयं नकटे हो। शीशे पर गुस्सा क्यों करते हो?

मनुष्य को चाहिए कि अपने निर्वाह भर के लिए काम करे। चित्त में हमेशा संतुष्ट रहे, यही नारायण के अन्तःकरण में आ जाने की पहचान है। हमेशा आत्म-विवेक से काम करे। अन्तर्मुख होने से आत्मा की प्रतीति होने लगती है।

युक्त आहार-व्यवहार हो; इन्द्रियां नियमित रहें; बहुनिद्रा, बहुभाषण न हो। परमार्थ महा धन है। अपनी देह देव के समर्पण कर दे, उसका कुछ भी भार अपने पर मत रख। इससे सर्व आनन्द होगा।

पर-द्रव्य और पर-नारी ही गंदी चीजें हैं। जो इनसे दूर है वही पवित्र है। गद्य-पद्य के ग्रन्थ लिखकर दूसरे के पैसे हरण करने की चेष्टा न कर। उससे अपनी बुद्धि निर्लिप्त रख। पाप-पुण्यातीत पूंजी इकट्ठी करनी चाहिए। वन में न जाओ; विश्व और विश्वंभर समान हैं।

ऐ मेरे दुर्गति करनेवाले मन, तुझे कितना समझाऊं ? तू किसीके पीछे-पीछे न लग। अन्य के प्रति किये गए स्नेह से दुःख होता है। जग के प्रति निष्ठुर होने में ही हरि का प्रेमसुख है। विचारकर देख और वज्र की तरह कठोर हो।

हाथ-पैर अग्नि की खूराक हैं, इसलिए हरि-भजन छोड़कर इनका पालन क्यों करते हो ? भक्तिभाव की जगह लज्जा या लौकिक व्यवहार का विचार न करना। जो इसपर हँसता है, उसे ब्रह्म-हत्या का पाप लगता है। कथा के समय जो कथा-श्रवण में मन पिरोता है, वह देववान है बाकी के लोग पत्थर हैं जो मनुष्य का जन्म लेकर आ गए हैं।

सब जग देव ही है तो भी उसके स्वभाव की ओर न देखकर उसके पैर ही पड़ना चाहिए। अग्नि का सौजन्य शीत-निवारण है, उसे पल्ले में न बांधो। सर्प, बिच्छू नारायण ही हैं, तो भी उन्हें दूर से ही नमस्कार करो हाथ न लगाओ।

तू भगवान् का स्मरण करता रह। काल तेरा दास हो जायगा। माया-जाल का बन्धन टूट जायगा। समस्त ऋद्धियां-सिद्धियां तेरे कहने के अनुसार करनेवाली हो जायंगी। सब शास्त्रों का यही सार है। यही वेदों का मुख्यार्थ है।

तू निश्चल बैठकर उसका ध्यान कर। वह तुझे अन्न-वस्त्र देगा। हमें अधिक संचय करके क्या करना है ? सबकी पूर्ति करनेवाला देव हमारा ऋणी हो गया है। वह बड़ा दयालु व मायालु है, भक्तों की जरूरतें जानने-

वाला है। शरणागतों से लाड़ लड़ाना भी जानता है। उससे मांगना या कहना नहीं पड़ता, क्योंकि जिसकी जैसी इच्छा है, उसे वह जानकर पूरी करता है। तू अपनी वाणी को विट्ठल के नाम का अलंकार पहना, इससे तू स्वयं ही दुनिया में विट्ठल हो जायगा।

हरि-भजन मेरे प्रारब्ध में नहीं है, ऐसा मत कह। रे मूढ़, ऐसा मत कह कि मेरी देह विषयोपभोग के लिए है। हे चाण्डाल, ऐसा न कह कि नर-देह परमार्थ करने के लिए दुर्बल है। इन मूर्खों को कहांतक कहूं ? मेरी नहीं सुनेंगे तो आखिर मुंह में धूल पड़ेगी।

स्वच्छंद जग की सेवा की इच्छा न रखो, क्योंकि उससे देव की अवज्ञा होती है। देह का निग्रह करनेवाला देव है, देह उसके हवाले कर देनी चाहिए।

जिन वचनों से नारायण से अन्तर पड़े, वे वचन गुरु के भी हों तो भी मत मानो।

भोग से ही रोग होता है। जिह्वा रस-सेवन के पीछे लग गई, तो दस्त होने लगते हैं।

जिह्वा से नित्य नारायण का नाम लेता जा। इससे जन्म, जरा, व्याधि, पाप-पुण्य. ये सब दुःख नष्ट हो जायंगे। जन्म, जरा, दुःख, व्याधि को और काम-क्रोध अहंकार की ऊर्मियों को तू समभाव से सहन करके अविनाशी आत्मसुख अपने अन्दर साध्य कर ले। अक्षरों को रटने से अभि-मान और विधि-निषेध पीछे लगते हैं, वाद करने से निंदादि दोषों का वज्रलेप लगता है। इस प्रकार ये भूषण दूषणों की जड़ हैं। इसलिए इन विषयों की छटपटी छोड़ दे और सर्वभाव से संतों की शरण जाकर हर हाल में प्रसन्न रह।

जिस पुरुष के दो स्त्रियां हैं, उसके घर पाप बसता है। जिसको पाप की तलाश हो, वह उसके घर चला जाय। जो झूठ बोलता है, वह पाप की खान है। जो सत्य बोलता ह उसके समीप सर्वसुखों का भंडार है।

देव के सिर पर अपना सब भार डालकर उसको देह समापत कर देनी चाहिए। 'देह मैं हूं' यह अभिमान मिथ्या है, ऐसा समझकर सारे संसार-भार के निमित्त स्वरूप इस अभिमान का त्याग कर दो। इस देहादिक प्रपंच का संग छोड़ दो तो तुम्हारे अन्दर भगवदानंद प्रकट होगा।

'देह मैं नहीं हूं' यह भाव दृढ़ होने पर जीव परमात्मा स्वरूप हो जायगा। इसलिए सारा समय इसी चिन्तन में लगाओ। देव से कोई स्थान खाली नहीं, इसलिए अपने रक्षण की चिन्ता न करो। जीव को अर्पण कर देने से हृदय में देव प्रकट हो जायगा।

देव पर पड़े हुए अपने समस्त भार को कहीं पर उतारो मत। भूख-प्यास के समय चिन्तन करना अच्छा। देव के चिन्तन में लापरवाही दिखाने से श्रीपति का अन्तराय होता है। मैं देव के सिवा सारा वैभव गंदा मानता हूं।

स्त्री के त्यागने से ब्रह्मचर्य की प्राप्ति नहीं हो जाती; देश त्यागने से वैराग्य नहीं आता। वासना के कारण काम और भय बढ़ता है। इसलिए धीरज से व्यर्थ की वासनाओं का त्याग करें। झूठी प्रशंसा करने से वाणी गंदी होती है।

अन्न न छोड़, बनवास न कर। सब भोगों के समय नारायण का चिन्तन कर। मां के कंधे पर चलनेवाले बालक को चलने का श्रम नहीं होता, उस बालक को मां के सिवा सब भावनाओं का मुंडन करना चाहिए। न भोगों में फंस, न त्याग में पड़। प्रसंगोपात्त जो-जो भोगता जाय,उसे देव के अर्पण करके नष्ट करता जा। इसके अतिरिक्त अब और कुछ बार-बार मत पूछ, क्योंकि इसे छोड़कर अब और कुछ उपदेश शेष नहीं रहा।

जबतक मुंह में राम नहीं है, तबतक सब झंझट व्यर्थ है। सावधान ! सावधान ! संकल्पों से मन को मुक्त करले ! जो भोग तेरे भाग में आयें उन्हें भगवान के अर्पण करके केवल ईश-चिन्तन कर।

जग को सच्चा मर्म नहीं बतलाना। तद्विषयक भ्रम रहने देना। सच्चा मर्म नहीं बतलाने से वे पीछे लगेंगे और व्यर्थ श्रम उठायंगे। वे सीखी हुई बात को हृदय में धारण नहीं करते। अनुभव के बिना कहना वृथा श्रम होगा।

एक जाति के प्राणी का दूसरी जाति के प्राणी से भेंट कराने का संकल्प हृदय में न लाओ। जो होनेवाला हो, वह होनहार के अनुसार होता रहे, जिस प्रकार कि नारायण ने तय कर दिया है। व्याघ्र की भूख मिटाने के लिए गाय का वध करना क्या पुण्यकार्य होगा ? स्वार्थी आदमी पूरा विचार नहीं करता।

सयाने को उपदेश का एक वचन ही काफी है। अगर तू आंखें नहीं खोलेगा तो अन्तकाल में यमराज तेरी खबर लेगा।

ऐसे देव को छोड़कर तू दीनवाणीवाला कैसे हो गया ? कामनाओं से हृदय भरा रखते हो, मगर आखिर में हाथ में धूल भी नहीं रहने की। उदार, जगदानी, शरणागत का अभिमानी पांडुरंग भगवान है। वह तुलसीदल, पानी और चिन्तन का भूखा है। सबके दुःख का निवारण वह स्वयं करता है। उससे मिलने के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

पहले अज्ञान के कारण जन्म-मृत्यु के बहुत-से दुःख सहन किये, अब आगे क्यों अन्धे बनें ? जो कुछ सुख-दुःख हों उन्हें देव पर डालने के अलावा किसी तरह भी कोई खटपट न करो।

इस मिथ्या प्रपंच का मोह न रखकर जीव को साक्षी के रूप में रहना

चाहिए। अनेकत्व में एकत्व है और एकत्व में अनेकत्व। प्रकृति स्वभाव के अनुसार उसका अनुभव होता है।

लोगों में अपना मान बढ़ा देखकर निश्चिन्त न हो; भूतों की प्रीति से भूत-गति (योनि) में जाना पड़ता है। इसलिए अपने मन को भगवद्भक्ति में लगाना चाहिए, वरना मन इंद्रियों की सहायता से बहिर्मुख हो जायगा। एक परमात्मा की ही ओर मन को लगाना चाहिए। मन का स्वभाव ऐसा है कि जिस रंग की ओर उसको लगावें उस रंग में रंग जाता है। देव सब कर्मों से निष्काम है और जीव अवस्था में ही कर्म करने की आदत होती है।

निर्वैर होना साधन का मूल है; शेष सब झंझट गौण हैं। ढोंग का कोई व्यवहार अधिक नहीं चलता; आखिर सच-झूठ का फैसला हो जाता है। जिसको प्रभुचिन्तन का ही प्रेम है, उसे ही सच्चे लाभ में समझना।

जो आशा को समूल खोदकर निकाल फेंक सके वही बैरागी बने।

तू जो कुछ सीखा है, उसका अभिमान रखेगा, तो यमलोक के रास्ते जायगा। जिसमें नम्रता नहीं, वह तलवार नहीं कठोर लोहा है।

जहां हरिनाम का गजर बज रहा है वहां तू अपार लाभ मुफ्त लूट!

रास्ते में चलते हुए कदम-कदम पर मां पांडुरंग का चिन्तन करना चाहिए। इससे वह भगवान सब सुख लेकर चिन्तन करनेवाले के पीछे लग जाता है, और अपनी पसन्द का रस उसके कंठ में डालता है। उस भक्त पर आसक्त होकर वह अपने पीताम्बर की छाया करता है, और उसके मुंह से क्या प्रिय उत्तर मिलते हैं, यह सुनने के लिए उसके मुंह की ओर देखता है। नारायण के नाम स्मरण को ही जीवन बना डालना चाहिए। इससे भूख-प्यास नहीं सतायगी।

अपना हित चाहते हो तो दम्भ को दूर करदो। शुद्ध चित्त से ईश्वर की

सेवा करो। विट्ठल का नाम एकान्त में प्रेम से गाओ। इससे अलभ्य लाभ घर पर चला आयगा। यह आखिरी बाण है; इसे छोड़कर वाणी का व्यर्थ व्यय न करो।

घाटे का व्यवहार खोटा है। जिन्होंने आलस को जीत लिया है, उन्हें देखकर भी तू अपने आलसीपने पर लज्जित नहीं होता।

जन्म-मरण में पड़कर तू नित्य नये-नये दुःखों से कष्ट पा रहा है। इसकी तुझे शर्म नहीं है? काम-क्रोधादि चोर तुझे पथ-भ्रष्ट करके नष्ट करने पर तुले हुए हैं। तू यह देखते हुए भी क्यों नहीं देख रहा?

शूरता का ही मोल है। थोथी बकवास से कार्य-सिद्धि नहीं होती। प्रतिज्ञापूर्वक किया हुआ निश्चय कभी न छोड़ो। धैर्य ही सफलता का कारण है। धैर्य से नारायण सहायक होता है। हरि निश्चय से अपने दासों का रक्षण करता है।

यदि तूने एकान्त में बैठकर एकाग्रचित्त से अपना चित्त शुद्ध कर लिया, तो तुझे ऐसा सुख मिलेगा जिसका अन्त नहीं।

मानव खुद ही तरता है और खुद ही मरता है। अतः अपना उद्धार स्वयं करो।

अरे, तुझे एक सेर अन्न की आवश्यकता है, उसीकी इच्छा रख! बाकी बड़बड़ व्यर्थ है। मोह-पाश में बंधकर क्यों तृष्णा बढ़ाता है? तुझे साढ़े-तीन हाथ जगह चाहिए, अधिक पाने का श्रम व्यर्थ है। एक राम को भूला कि शेष सब श्रम ही है।

जिस तरह कोल्हू के बैल पर करुणा न लाकर तेली उसे मारता है, उसी प्रकार भवभ्रमण के दुःख सहने ही पड़ते हैं। इसलिए जबतक तुम्हारे हाथ में है, अपना स्वहित देख लो।

मनुष्य-देह दीर्घ काल के बाद मिली है। शीघ्र लाभ ले लो, वरना वह नष्ट हो जायगी। हरिनाम तत्परता से लो और सुख के भंडार भर लो। बाद में फुरसत के समय अपना हित-साधन कर लेंगे, ऐसा कहना पागलपन है। क्या जीना अपने हाथ में है?

हर एक की चाह पूरी करने के लिए नारायण हाथ ऊपर उठाये खड़ा है। वह सर्वज्ञ, उदार, माईबाप जिसको जो रुचता है, उसके सामने ला रखता है। जैसे अपने कर्म होते हैं वैसी ही पसन्द होती है और वैसा ही खाना और भोगना पड़ता है। इसलिए मूल वस्तु को ही विचारपूर्वक ग्रहण करना चाहिए। जो बोया जाता है उसीका फल काटना पड़ता है! बबूल के पेड़ पर आम कैसे आयंगे? ईश्वर से कुछ न कह, तू स्वयं ही अपना शत्रु-मित्र है।

अगर तू इन्द्रियों का दमन नहीं कर पाया तो फिर तूने यह परमार्थ की दुकान क्यों लगा रखी है? बाहर से धुला हुआ, अन्दर से मलिन। इस तरह अन्त में तेरे हाथ कुछ नहीं लगेगा।

लोग जब निष्काम होंगे तभी राम को आंखों से देखकर रामरूप हो जायंगे।

हे संतो, अच्छी तरह सुनो। सबका सार एक यही है कि दुर्जन का त्याग करना चाहिए। प्याज़ से भी ज्यादा बदबू प्याज़ खानेवाले के मुंह से आती है। जैसा संग वैसा रंग।

अन्तकाल का संबंधी भगवान ही है, उसीका आश्रय ले।

शरीर को बाहर से धोने में क्या है? जबकि अन्तःकरण गंदा है, पाप-पुण्य की गंदगी तेरे अन्दर भरी हुई है। फिर हमेशा पवित्र रहनेवाली भूमि की छुआछूत का तू क्यों विचार करता है।

ऐ मेरे अधीर मन, मैं तुझसे एक बात पूछता हूं। तू निरन्तर दुश्चिंत क्यों रहता है? खाने की चिन्ता करता है। तुझसे अच्छे तो पक्षी हैं। चातक पक्षी पृथ्वी का जल नहीं पीता, इसलिए उसके लिए बादल गर्मी में वर्षा करते हैं। कितने ही जीव पानी और वन में हैं, उनके पास कोई संचय है क्या?

अरे, तू कृपालु देव का चिन्तन क्यों नहीं करता? वह अकेला सबका प्रतिपालन करता है। गर्भ के बच्चे की वृद्धि और मां के स्तनों में दूध की उत्पत्ति कौन करता है? ग्रीष्म काल में पेड़ों पर पत्तियां फूटती हैं। उन्हें पानी कौन देता है? उसने तेरी क्या चिन्ता नहीं की? तू उसीका स्मरण करता रह। जिसका नाम विश्वंभर है, उसीका ध्यान तू सतत धर।

कन्या-पुत्रादि का मोह मंगलदायक नहीं। इससे अपने और परमात्मा के बीच एक लौकिक पर्दा पड़ जाता है।

दही में छाछ और मक्खन दोनों होते हैं, परन्तु दोनों को एक दाम पर न मांगो। आकाश के पेट में चन्द्र और तारागण होते हैं, परन्तु दोनों को समान न समझो। पृथ्वी के पेट में हीरे और कंकर-पत्थर हैं, इन दोनों को एक-दूसरे से न बदलो। उसी प्रकार संतों और संसारियों को समान रूप से न भजो।

जिससे अपकीर्ति हो उसका पूर्णरूप से त्याग कर देना चाहिए।

त्याग करना हो तो अहंकार का त्याग कर। फिर जिस स्थिति में तू हो उसमें रह। फिर देख कि शेष क्या बचा। द्वैत को सामने न आने दो। शुद्ध मन और सन्तोष चाहिए।

उत्तम व्यापार से द्रव्य प्राप्त करो और उसे उदासीन भाव से खर्च करो। इससे उत्तम गति और उत्तम भोग मिलेंगे। परोपकार करना, पर-

निन्दा न करना, पर-स्त्री को मां-बहन समझना, भूत-दया से गाय आदि पशुओं का पालन करना, प्यासों के लिए जंगल में पानी का प्रबन्ध करना है, शांतरूप रहना और किसीका बुरा न चाहना, बड़ों का महत्त्व बढ़ाना—गृहस्थाश्रम के ये ही मुख्य फल हैं और परमपद-प्राप्ति के लिए आवश्यक वैराग्य-बल यही है।

कोई चीज खो जाय तो उसके लिए व्यर्थ जी न जलाना। यह समझ लें कि वह वस्तु आपने कृष्णार्पण कर दी।

हे देव, विषय-सेवन में तू मुझे आलसी बना और तेरा नाम लेने की शक्ति दे। और कुछ बोलने में मेरी वाणी को गूंगी कर, परन्तु तेरा गुणानुवाद करने में मेरी वाणी को बल दे। तेरे चरणकमलों के अतिरिक्त और कुछ देखने में मेरी आंखों को अंधा बना दे।

हे प्रभो, आपसे मेरी एक ही मांग है कि दुर्जन की संगति मुझे बिलकुल न होने दे। उससे घड़ी-घड़ी चित्त में विक्षेप होता है।

जो अपने हित की बात कहता है, वह मानो जीवनदान देता है, और जो मनपसन्द आचरण करने की बात कहता है उसे घात की समझना। जिस तरह गलत रास्ते पर जानेवाले अंधे को रोका जाता है, उसी प्रकार अधर्मी को जबरदस्ती करके भी रोकना चाहिए।

तू ऐसा संन्यास ले, जिससे तेरे संकल्प का नाश हो जाय ; फिर तू कहीं रह—बस्ती में, जंगल में, पलंग पर या जमीन पर, चाहे जहां। जैसे आकाश अणु-अणु में समाया हुआ है, उसी प्रकार देव सर्वत्र है।

तू शास्त्रों के शब्दों का वाचन करता जाता है, बारंबार उनका पारायण करता है, परन्तु जबतक तेरा अन्त:करण शुद्ध न होगा, तबतक वह सब व्यर्थ है। भावार्थ ग्रहण किये बिना ऊपरी वाचन भाररूप है। प्रभु-प्राप्ति करनी है तो उसके प्रति एकनिष्ठा-युक्त भाव रखता जा।

अपना सम्पूर्ण भार देव के सिर पर डालकर अयाचक वृत्ति स्वीकार करना ही सार है। अपनी देह को देवाधीन कर देना और उसके द्वारा योग्य समय पर योग्य कर्म कराते रहना। इस विश्व के अन्दर विश्व का पोषण करनेवाला है ही, ऐसा निश्चय मन के साथ कर लिया कि वही जिस समय जैसी चाहिए, वैसी व्यवस्था कर लेता है। तुम निश्चय समझो कि उपर्युक्त स्थिति एक प्रकार का बल ही है।

जो तुम्हें ब्रह्मज्ञान चाहिए तो सन्तों के चरणों की सेवा करो।

'यह मेरा' और 'यह तेरा', यह द्वैतभाव जाता रहे तो जीवात्मा पर जो-जो बोझा है वह सब उतर जाय। इस एक बात के अलावा आपको और कुछ भी नहीं करना है और कुछ त्यागना भी नहीं है। स्वरूपभाव स्वभावतः शुद्ध है। प्रपंच के मोहजाल में आशा-तृष्णा के कारण जीव बन्धन में पड़ गया है। जीव को फंसा मारनेवाला तो उसके मन का झूठा संशय ही है। स्वरूप-स्थिति में सुख का अनुभव होता है और दुःख की छाया भी वहां नहीं होती। सबका कर्त्ता एक नारायण है। लाभ-हानि, मान-अपमान को समान जानना। इसे ही सच्चा सुखी जानना।

एक अच्युत के नाम-चिन्तन से तेरे तमाम कार्य सिद्ध हो जायंगे। एक हरि के ऊपर निष्ठा रखना, यही सौ बात-की-बात है।

केवल भाव-भक्ति से ही तुम्हारा काम होनेवाला है। दंभयुक्त आचरण से तुम्हें नक्सान ही होगा।

देव की ही स्तुति करो और जो निन्दा करने का मन हो तो भी देव की ही करो। दूसरे काम में वाणी का व्यय करना अधम कार्य है। लोग सम्यक् ज्ञान की बातें सुनते वक्त बहरे हो जाते हैं और नरक से जानेवाले कामों को पैसा खर्च करके भी करते हैं।

भवसमुद्र में डूबे हुओं को बारहों घड़ी उस पार जाने का विचार करते रहना चाहिए। यह देह नाशवान् है और किसी-न-किसी दिन विलीन हो जानेवाली है। इस ऐहिक और प्रापंचिक व्यवहार के उन्माद के वशीभूत होकर अंधा नहीं बन जाना चाहिए।

महान् पुरुषों के साथ जान-पहचान रखना अच्छा है। उसके अतिरिक्त अन्य लोगों के साथ भाई-चारा करने की झंझट में न पड़ना। लूटना हो तो ऐसा खजाना लूटो कि जिसका कभी अन्त ही न आवे। महान् यश प्राप्त करके जीना उत्तम जीवन है।

परमार्थ की साधना करते समय कोई दूसरे की बाट न देखे, न दूसरे के लिए खड़ा रहे।

जैसे मिश्री की डली पानी में पड़कर उसके साथ मिल जाती है, उसी तरह तुम भी अपना मन नारायण को अर्पण करके उसके साथ तद्रूप हो जाओ।

कंगाल लोग धनियों का नाश चाहते हैं; मूर्ख पंडितों की मौत चाहते हैं। भाई, तू दूसरों का खयाल छोड़कर देव की शरण में जा।

हे मनुष्यो, तुम जरा भी चिन्ता नहीं करना और लेश-मात्र भी भय नहीं रखना। कारण कि नारायण अपने भक्तों का हमेशा सहायक होता है और उनका रक्षण करता है। उससे कुछ कहना हो तो शब्दों की योजना करके सुन्दर भाषण तैयार करने की भी जरूरत नहीं पड़ती। निर्भय और निःशब्द रहो।

ऐ मेरे मन, तू अन्य कोई संकल्प-विकल्प न करके केवल भगवान का ही चिन्तन करना। वहां अपार पुख-भंडार है। वहां कल्पना की गति कुंठित हो जाती है। वहां हृदय को विश्रांति मिल जाती है और तृष्णाएं शान्त हो जाती हैं।

दुर्जनों के साथ कभी मित्रता नहीं करना, उनका कभी संसर्ग भी न होने देना ; क्योंकि उससे बार-बार चित्त का भंग हुआ करता है। दुर्जनों से तो दूर-दूर ही रहना और उनके साथ बोलने तक का प्रसंग न आने देना।

नारायण की एकविध और एकनिष्ठ होकर उपासना करना, क्योंकि विषय-भाव से उसे कष्ट होता है। तद्विषयक भावना में तनिक भी अन्तर न पड़ने देना। विक्षेप का नाश करना और नितांत एकाकी रहकर आनन्दकन्द श्रीहरि में अनन्यभाव रखना। आलस और निद्रा का त्याग करना, धैर्य धारण करना और जाग्रतावस्था में रहकर हरिस्वरूप का दृढ़ आलिंगन करना।

अरे जल जाय यह ज्ञान और यह चतुराई! भगवान् के चरणों में मेरा भाव बना रहे, मुझे इतना ही बहुत है। ये आचार और ये विचार भी जल जायं! मेरा मन प्रभु में स्थिर हो जाय यही बहुत है। दंभ, मान और लौकिक व्यवहार में आग लगे। मेरा मन परमात्मा के ध्यान में मग्न रहे मुझे इतना ही चाहिए। यह शरीर जल जाय और इसके सम्बन्धी भी जल जायं। मेरे कंठ में निरन्तर परमानन्द श्रीहरि का वास हो यही बहुत है। मेरे मन! जिससे सबकुछ सिद्ध हो जाता है ऐसे श्री विट्ठल के चरणों का आश्रय ले।

चित्त में विवेक का उदय होने पर वैराग्य धारण करना चाहिए। उससे पहले वैराग्य लेने से लोगों में बड़ाई मिलती है पर उद्धतता भी आ जाती है। अन्तर के आदेशानुसार आचरण करना ही उत्तम है।

जितना बोलने से तुम्हारा हित हो उतना ही बोलो। व्यर्थ बड़बड़ करके सुखी जीवों को कष्ट न दो। तुम स्वयं शुद्ध हो जाओ इतना ही बहुत है। मैं तुम्हारे पैरों पड़कर कहता हूं कि दूसरों को धिक्कारो मत; अपनेको शुद्ध बनाओ।

अरे मनुष्यो! तुम अपने जीवन में चाहे करोड़ों रुपयों की सम्पत्ति

प्राप्त कर लो, फिर भी मरने पर उस सम्पत्ति में से एक लंगोटी भी तुम्हारे साथ नहीं चलेगी। तुम इस समय पान चबाकर लाल मुंह किये फिरते हो, परन्तु आखिर में तुम्हें फीके मुंह ही जाना होगा। आज तुम गद्दों-तकियों पर सोते हो, पर एक दिन तुम्हें गाय के गोबर से लिपी जमीन पर सोना होगा। अगर तुमने रामनाम को भुला दिया तो निश्चित जानना कि जन्म वृथा गंवा दिया।

किसी का संकोच करना है तो अपने चित्त का करो। खूब सुख मिले, वही काम करना। भूतमात्र के प्रति समदृष्टि रखना ही देव की सच्ची पूजा है। मत्सर रखने से दुःख होता है। किसीसे रुष्ट होना हो अथवा मुंह चढ़ाना हो, तो अपनी जात पर ही; क्योंकि शेष सब तो हरिरूप हैं। सबका प्राण हो जाना ही संतपन है।

तू देवताओं के पूजन के झंझट में न पड़। जप, तप और ध्यान करने की मायापच्ची न कर। परमात्मा के रास्ते मुड़। उसकी भक्ति के आनन्द का अनुभव करने लग। वहां जो सहज गुह्य तत्व हैं, वे तेरा निजस्वरूप ही हैं। इसे तू स्वानुभव से देख ले। अब तू सावधान होकर इस एक ही जन्म में संसार-बंधनों को तोड़कर मुक्त हो जा।

तू हर समय खाने-पीने की ही चिन्ता करता रहता है। अपने कल्याण का तू तनिक भी विचार नहीं करता। श्रद्धा रख, ईश्वर तेरी कभी उपेक्षा नहीं करने वाला है।

मुंह से 'राम', 'हरि' नामोच्चार का साधन बड़ा सरल है। इससे अलभ्य लाभ तुम्हारा घर पूछता-पूछता चला आयगा। इसके सिवा कोई कैसी भी भजन साधन करने की चेष्टा करना ही नहीं। तप, तीर्थाटन, महादान—कुछ भी करने की जरूरत नहीं है। सिर्फ मन को एकाग्र करके नामचिन्तन करने

से तुम्हें हरिप्राप्ति हो जायगी। केवल नाम की सहायता से ही तुम्हें नारायण की प्राप्ति हो जायगी।

जिसकी संगत करने से मन को सुख होता हों उसीकी संगति करनी चाहिए। जिसके संसर्ग से चित्त को क्षोभ होता रहता हो उनसे दूर रहना चाहिए। जिनका स्वभाव अपनेसे प्रतिकूल हो उनके साथ सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए, चाहे वे कोई हों।

जिस द्रव्य के अन्दर पन्द्रह प्रकार का अनर्थ भरा है, उसे तू दूर फेंक दे। जिसमें तेरा कल्याण है, जिससे तेरा सच्चा स्वार्थ सिद्ध हो, उसे तू सिद्ध कर ले।

जबतक मन में से काम का नाश न हो गया हो तबतक स्त्री-बच्चों का त्याग करना योग्य नहीं है।

अनेक प्रकार की वासनाओं से प्रेरित होकर संकल्प करना और उनके पीछे पड़ना, इसकी अपेक्षा तू संकल्पों और उनके परिणामों को ही छोड़ दे। इस प्रकार दुःख का सरलता से अन्त आ जायगा। स्वप्न के जख्मों पर तू व्यर्थ रोता है। जितनी जल्दी हो सके तू मूलदेव की शरण जा। वहां तुझे सब फलों की प्राप्ति हो जायगी।

सारे कुटुम्ब का त्याग करने पर भी अगर तत्सम्बन्धी वासना रह गई तो पुनः कुटुम्ब की प्राप्ति हुए बिना न रहेगी। तो फिर त्यागी होने का ढोंग करने का क्या प्रयोजन है?

जो जिसका ध्यान करता है उसके साथ तद्रूप हो जाता है। इसलिए तुम जिस प्रपंच का फैलाव किये बैठे हो उसका क्षय कर डालो, और खूब दृढ़ मनसे

विश्वव्यापी भगवान का स्मरण करने लगो। वह आकाश से भी बड़ा है और अणु-रेणु में भी समा सकता है।

अरे! तू अपने मन को संकुचित करके छोटा क्यों बन जाया करता है? देव को अपने हृदय में समा ले और ब्रह्माण्ड को एक ही ग्रास में निगल जा। 'मैं देह हूं' इस भावना से तू छोटे से घर में घिर गया है।

ग्रन्थों का अध्ययन और पारायण ही करता बैठा न रह। जितनी जल्दी हो सके एक व्रत का आरम्भ कर—देव की ही इच्छा की शरण होकर और देहाभिमान छोड़कर देव का ही भजन करने लग। भगवान ऐसे हैं कि नाम स्मरण करनेवाले को तुरन्त संसार-सरिता के पार उतार देते हैं।

मिलन का सुख लेना हो तो पहले सर हथेली पर लेना होगा। अपने हाथों अपने संसार में आग लगानी होगी और मुड़कर देखना न होगा। जिस तरह पतंगा जान जोखिम में डालकर दीपशिखा पर टूट पड़ता है, उसी तरह तुम्हें भी निर्भय हो जाना चाहिए।

मन में एक भाव और जबान पर दूसरा भाव यह तू करता तो है, परन्तु अन्तर्यामी परमात्मा तेरे दोनों भावों को जानता है।

इस भयंकर और प्राणघातक धन-सम्पत्ति में लुभाकर तू क्यों भुलावे में पड़ा है? तू रामनाम गा; कोई गाता हो तो सुन। राजा आदि दूसरे लोगों को तू अपना मानता है। परन्तु जब काल आयगा तब कोई काम नहीं आयगा।

मेरे राम के सिवा साररूप सुख और किसमें है, यह तू मुझे बताए तो मैं तेरा दास हो जाऊं। कीर्ति और नाम के लिए चाहे जितनी दोड़-धूप करो, परन्तु एक दिन उसका नाश हुए बिना नहीं रहनेवाला है।

संसार का त्याग करने से पहले मन को शुद्ध कर लेना चाहिए। काम-

क्रोधादिक वृत्तियों को आश्रय देने का नाम ही संसार है। जिसने अपने देह-सम्बन्धी लोभ को छोड़ दिया, वही सच्चा संन्यासी है।

यदि तेरा अन्तःकरण भगवा रंग से रंग नहीं गया तो बाहर से भगवा वस्त्र पहनकर तू क्या करनेवाला है? अपने बहिरंग को तू मरते दमतक धोया करे तो भी उससे तेरे अन्तःकरण का मैल दूर नहीं होनेवाला।

जिसके संसर्ग में आने से प्रेम-सुख दूना हो जाय उसकी संगति करनी; और जिसकी संगति से अपने मूल प्रेम में भी कमी हो जाय, उसे कलमुंहा दुर्जन समझना। अगर मिलना ही हो तो मन-को-मन के साथ मिला देना ही उत्तम है।

सारा जगत् देवरूप है, यही एक मुख्य उपदेश मुझे करना है। पहले तो तुममें जो 'मैं-पना' है उसका त्याग कर दो। इतना करोगे तो कसौटी पर खरे उतर जाओगे। इस एक ही वचन में ब्रह्मज्ञान का भण्डार है, यह निश्चयपूर्वक मान लो।

प्रापंचिक काम करते समय उनमें आसक्त मत हो। ममत्व-रहित एवं निर्लिप्त रहना चाहिए। सब प्रकार की लज्जा छोड़ देनी चाहिए। नाना प्रकार की उपाधियों के बन्धन को तोड़ डालो और एकत्व में रहने-वाले एक अद्वितीय परमात्मा का साक्षात्कार करो। समस्त प्रकार के देहा-दिक प्रपंचों की माया से अलग हो जाने पर सांसारिक कामों में भी वास्तविक सुख मिलता है। ऐसी स्थिति प्राप्त करने के लिए पहले सद्विचार करके देहादि का सम्बन्ध तोड़ डालना चाहिए। तुममें और मुझमें दोनों में एक सामान्य आत्म-स्वरूप भाव है। उस स्थिति में अवस्थान करके तुम भेदशून्य और सर्वोच्च स्वरूपावस्था को प्राप्त कर लो।

पंचभूतों और सप्त धातुओं से बनी हुई देह को जीतकर जो तू अपने अधीन नहीं करेगा तो इस खेल में कैसे टिकेगा?

भगवान का एक क्षण के लिए भी विस्मरण न होने दो। सबके जीवन को सरल बना देनेवाला यही एक उपाय है। गुरु करने की और उससे कान फुंकवाने की कोई दरकार नहीं है।

जो तू ऐक्यभाव से क्रीड़ा करने लगेगा तो तू इस संसार के शिकंजे में नहीं पड़ेगा। द्वैत भावना रखी तो फंसा ही समझना। तू संसाररूपी खेल खेलते समय अपनी आत्म-स्थिति में स्थिर रहकर संसार के खेल से अलिप्त रहना और विषयों का सम्बन्ध काट डालना। इस प्रकार संसार-क्रीड़ा करता हुआ तू एक दिन देव बन जायगा।

एक भगवान के सिवा तुम्हें कुछ जानना ही नहीं है। स विषय में जरा भी संशय रखोगे तो तुम्हें निरर्थक श्रम करना पड़ेगा। जिससे प्रेम उत्पन्न हो, ऐसे साधन का अभ्यास हमेशा करते रहो।

जो न्नारायण का स्मरण करावे, उसे ही सच्चा दाता समझो।

देव के ऊपर खूब बलपूर्वक विश्वास रखना, यही गुप्त रहस्य है। ज्ञानी-पने का जितना ढोंग करोगे, व्यर्थ जायगा। संगमात्र का परित्याग करके एक देव के ऊपर के भाव को दृढ़ करो।

नारायण सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है। इसीलिए उसे जनार्दन कहते हैं। तुम उस नारायण का स्मरण करोगे तो सब देव-देवियां तुम्हारे पैरों पड़ती चली आवेंगी।

जैसे हो पर-द्रव्य और पर-स्त्री की इच्छाएं तो मन से निकाल ही दो। फिर भले ही इस प्रपंच में सुखपूर्वक रहो। अपने व्यवहार में दंभ को स्थान न दो। अत्यन्त शांत रहो और रामनाम-रस का सेवन करो। स विषय में आलस न करो। सारे जगत् के मित्र बनकर रहो। वाणी से अशुभ वचन न बोलो। दुर्जनों के सहवास में न रहो। परमार्थ की साधना के लिए जैसा प्रयत्न संतों ने किया ै वैसा तुम भी करो।

एक देव के सिवा दूसरी हर वस्तु और हर व्यक्ति की आशा व्यर्थ है। तृष्णा को अत्यन्त बढ़ा डालने से कभी सुख का स्वाद नहीं मिलनेवाला। खूब धैर्यपूर्वक भगवान के ऊपर विश्वास रखो और सबका कर्ता-हर्त्ता एक देव ही है, ऐसा भाव मन में दृढ़ रखो। देव तुम्हारा योग-क्षेम निभाता रहेगा, उसमें जरा भी त्रुटि न आने देगा।

हरि का नाम ओठों पर रखने के समान ही मन में भी रखते रहो। इससे समस्त जगत् तुम्हारे लिए मधुमय बन जायगा, तुम्हारी सम्पूर्ण इच्छाएं खेलते-खेलते पूर्ण हो जायंगी। सच्चे अन्तःकरण से किया हुआ काम दीप्त हो उठता है।

: ८ :

अज्ञानी जीव और दुर्जन

जो कुछ काम होते हैं वे सब भगवान की ही सत्ता और प्रेरणा से होते हैं। मगर अविवेकी जीव को इस मर्म की प्रतीति नहीं होती। वह 'मैंने किया' की ैत भावना रखता है। इसीसे उसके पीछे 'भूत' लगे हुए हैं। यानी पंच-महाभूतात्मक देह उसको खोजती हुई आती है। यद्यपि काल ने इस मूर्ख का गला दबा रखा है, फिर भी लगातार 'मैं-मैं' चिल्लाता रहता है।

वृत्ति, भूमि, द्रव्य, राज्य चाहनेवालों को प्रभु की प्राप्ति हरगिज नहीं होनेवाली है। भाड़े के लोभ से बोझा ढोनेवाले कुली को बोझे के अन्दर की सार वस्तु का लाभ नहीं होता। किसी एक विषय का लोभ चित्त में रखकर देवपूजा पर मन लगानेवाला आदमी पत्थर है और पत्थर की ही पूजा कर रहा है। अनेक प्रकार के कर्म करके बड़े चाव से उसकी फलेच्छा करनेवालों का तमाम कौशल वेश्या के आचार की तरह है।

संसार के पाले पड़े हुए जीवों को विश्रांति नहीं। उनमें निरन्तर अर्जन व विषय-सेवन का गर्जन होता रहता है। कुटुम्बियों का समाधान करने के लिए उनको रात-दिन काफी नहीं होते। इसलिए उनको देव-दर्शन दुर्लभ हो गया है। ऐसे लोग आत्म-हत्यारे हैं।

जिस गांव के लोग सेवा-भक्तिहीन हैं वह स्मशान है और वे लोग प्रेत हैं। वे कुत्तों की तरह पेट भरते हैं। उन्होंने अपने घरों में यमदूतों को बसा रखा है।

भक्ति-भाव से जिनके नेत्र नहीं छलकते और अन्तर नहीं उमड़ता, उनके सारे बोल थोथे हैं और लोगों का खोखला रंजन करने के लिए हैं।

काम-क्रोध दुष्ट विकारों को जैसे-के-तैसे रहने देकर तिल-चावलों की तू क्यों आहुतियां देता है ? भगवान को भजने के बजाय यह कष्ट क्यों वृथा उठाता है ? जिसने अक्षरज्ञान प्राप्त किया, मान-दंभ के लिए तप और तीर्थाटन करके अभिमान बढ़ाया, दान देकर मात्र अहंता का रक्षण किया, ऐसा व्यक्ति आत्म-प्राप्ति के मार्ग से भटक गया, और उसने जो कुछ किया अधर्म ही किया ।

जिसके कण्ठ में कृष्ण नाम की मणि नहीं, उसकी वाणी अशुभ है, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री । जिसके हाथ में दानवीरता का कंकण नहीं है, संत उसकी फजीहत करते हैं ।

धर्म-ठग लोग माया को ब्रह्म कहते हैं । वे अपनी तरह लोगों को भी भ्रांति में डालते हैं । देह का पालन करनेवालों को नारायण नहीं मिलते ।

मूर्खों को यह नहीं सूझता कि किस समय क्या करना और क्या न करना । वे दूध और छाछ की एक ही कीमत करते हैं ।

सोने के थाल को दूध से भरकर कुत्ते के सामने रखने से, मोतियों का हार गधे के गले में डालने से, सूअर की नाक में कस्तूरी लगाने से और बहरे को ज्ञान सुनाने से क्या लाभ ? सच्चा मर्म कोई बिरला ही जानता है; भक्ति की महिमा साधु ही जानते हैं ।

जन्मान्ध को सारी दुनिया अन्धी लगती है, क्योंकि उसकी स्वयं की आंखों में दृष्टि नहीं होती । रोगी को मिष्टान्न विषतुल्य लगता है, क्योंकि उसके मुंह में स्वाद नहीं होता । जो स्वयं शुद्ध नहीं है, उसको त्रिभुवन अशुद्ध लगता है ।

जो स्त्री के अधीन है, उसके जीने को धिक्कार है । उसका इहलोक या परलोक में कहीं मान नहीं है । जिसका मन लोभी है,जिसके यहां अतिथि-अभ्यागत पूजे नहीं जाते, उसके जीने को धिक्कार है । जिसमें आलस और

निद्रा अधिक है, जो अमित-आहारी अघोरी है, उसके जीने को धिक्कार है। जिसमें विवेक वैराग्य नहीं है, मगर जो साधु कहलाने के लिए तिलमिलाता रहता है, उसके जीने को धिक्कार है। निन्दक और विवादी वृथा जन्म लेकर आये; वे नरक जाते हैं।

जो मुंह से ब्रह्मज्ञान बोलता है और मन में धन और मान की इच्छा रखता है, ऐसे की सेवा करने से जीव को क्या सुख होगा?

सूअर मजे से विष्टा खाता है। उसे मिष्टान्न की लज्जत का क्या पता? उसी तरह अभक्तों को पाखंड प्रिय लगता है। उन्हें परमार्थ मधुर नहीं लगता। कुत्ते को पंचामृत खिलाओ तो भी उसका चित्त हड्डी पर रहता है। सांप को दूध पिला दें, तो भी उसके मुंह से वह विष होकर ही निकलता है।

गधे को महातीर्थ में धोया तो भी वह श्यामकर्ण घोड़ा नहीं हो जाता। उसी तरह दुर्जन को उपदेश देना फिजूल है; क्योंकि उसका मन शुद्ध नहीं है। सांप को शकर डालकर पीयूष पिलाया, तो भी उसका आन्तरिक विष नहीं जाता।

जिसका शरीर नवज्वर से तप्त है, उसे दूध विष जैसा लगता है। उसी तरह जिसने परमार्थ का त्याग कर रखा है, उसे सचमुच सन्निपात हो गया है। जिसको पीलिया हो गया है उसे चन्द्रमा पीला दिखाई देता है। जिसे शराब पीने का शौक है, उसे मक्खन का स्वाद नहीं भाता।

हे प्रभो, परमार्थ रस इन दुर्जनों की संगति से नष्ट हो जाता है। जो भ्रष्ट जीव हैं वे मुंह से नरकतुल्य गन्दे शब्द निकालते हैं। अच्छे मीठे अन्न को कुत्ते मुंह डालकर भ्रष्ट कर देते हैं। जो संतों की मर्यादा नहीं रखते, वे निंद्य हैं।

जो दुराग्रही हैं, उनका झुकाव अमंगल की ओर है। चित्त के संकोच से

कुछ काम नहीं होता। चित्त की अप्रसन्नता से कुछ करना पागलपन है। योग्य काल के बिना कोई बात मान्य नहीं होती, ऐसा कर्त्ता ने नियम कर रखा है।

मैं आशा के भंवर में पड़ा हुआ था। मिथ्या-अभिमान लेकर मैं सब ोषों का पात्र बना था। इतने में मेरी आंख खुल गई,नहीं तो मैं बड़ा दुःखी होता। इस मिथ्या देहाभिमान की चेष्टा से ही सब जग आक्रोश करता है। मरने की सुध नहीं। लोभ की ओर बुद्धि प्रवृत्त रहती है। उससे वह पीछे हट नहीं पाती। धन जोड़कर मर जाते हैं। लड़के उस धन के लिए लड़ते हैं। वे जीते-जी नारायण को याद नहीं करते।

ऐसे प्रेमरंग में आग लगे, जिसमें पतंगा दीपशिखा पर पागल होकर अपने प्राण गंवाता है। सास के लिए बहू रोती है, मगर अन्तर का भाव भिन्न होता है। कपटी मुँह से अच्छा बोलता है मगर अन्तर का भाव और ही होता है। वृन्दावन फल बाहर से अत्यन्त कांतिवान् मगर अन्दर से कड़ुवा होता है, इसलिए हाथ न लगाओ। बगुला ध्यान का ोंग करके मछलियां मारता है। बांसुरी के बजने पर जैसे सांप डोलता है, उसी तरह ढोंगी लोग हरिकथा में ऊपरी तौर पर तल्लीन हो जाते हैं।

सत्य की प्रतीति हो जाने पर भी लोग अपना हित न साधकर भ्रम के चक्कर में क्यों पड़ते हैं? सत्य को जानने पर भी स्वयं अपना अहित करते हैं। हे प्रभो, यह हालत देखो। मछली मांस की आशा से अपना गला फंसाती है। उसी तरह आदमी धन की इच्छा से फंस जाता है। कर्म बड़ा बलवान है; उसके द्वारा बुरा होनेवाला हो तो होता ही है।

नाटक-तमाशों में स्त्रियों का वेष धारण करनेवाले नटों को न देखो। जो पैसे देकर देखते हैं, वे दोष खरीदते हैं। नाटकी लोग कृष्ण व गोपी के वेष बनाकर चीरहरण का खेल करते हैं, इसमें मातृ-गमन सरीखा पाप है। देखो, इन सेवा-भक्तिहीन लोगों को विषय-रस का कैसा चस्का लगा ह!

कितने ही शब्द ज्ञानी मनपसन्द भोजन करते हैं और बताते हैं कि 'नारायण ने ही यह भोग किया'; 'सब देव ही है, उससे अलग क्या है'—आदि। मगर संपत्ति के लिए औरों का सिर फोड़ने पर उतारू हो जाते हैं। त्यागियों के-से वस्त्र, कमण्डल और थेगड़ियों की गुदड़ी रखते हुए उनके ब्रह्मज्ञान को लज्जा लगती है। 'सब नश्वर है'—ऐसा मुंह से बोलते हैं, मगर शाल-दुशाले, चांदी-सोना, भोग-उपभोग सामग्री प्राप्त करने की इच्छाएं रखते हैं। ऐसे ज्ञानियों की, करोड़ों जन्म लेन पर भी, देव से भेंट नहीं होने-वाली।

अरे हीन, तू अपनेको हरि का दास कहलवाता है और दीनों को 'महा-राज' कहता है। तुझे शर्म नहीं आती ? विषयी-जनों की सभा में जाकर कूल्हे मटकाता है ! इसके बिना क्या तेरा पेट नहीं भरता ? पेट ने आदमी की ऐसी विडम्बना की है कि वह दीन बनकर लोगों की खुशामद करता है।

घर-घर सब ब्रह्मज्ञानी हो गए हैं। मगर उनका ब्रह्मज्ञान आशा तृष्णा, माया से मिश्रित होने से दांभिक हो गया है। काम-क्रोध-लोभ के विष से मिले होने से वह बहुत क्लेश देता है; निन्दा-अहंकार-द्वेष से वह बहुत मैला हो गया है। ऐसे ज्ञान से कुछ भी हाथ न लगकर मूल्यवान आयु व्यर्थ जाती है।

जैसे कोई पारस देकर कांच ले, उसी तरह लोग अल्प लोभ से परमार्थ की बिक्री करते हैं। इन लोभियों ने स्वर्गलोक में जाकर वहां दिव्य भोग भोगकर अपने पुण्य नष्ट कर डाले।

वड़े-बड़े कवीश्वरों से हम दूर ही रहते हैं, क्योंकि वे प्रासादिक कविताओं में से अंश लेकर अपनी कविता में घुसाकर स्वयं कवि होने का दावा करते हैं। उन्हें कीर्ति की चाह होती है; ऐसे अन्धों के मुँह आखिर में काले होंगे।

जो भूत, भविष्य, वर्तमान के शकुन बताते हैं, उन लोगों से मुझको तकलीफ़ होती है, मुझे उन्हें आंखों से देखना भी अच्छा नहीं लगता। कुछ लोग ऋद्धि-सिद्धि के साधक होते हैं, कुछ वाचा-सिद्धि कर लेते हैं, मगर ये लोग पुण्य-क्षय हो जाने पर अधोगति को जाते हैं।

जिसको 'पंडित' कहे जाने पर खुशी हो, उसे निपट मूर्ख समझो। सर्व जो समब्रह्म नहीं देखता, वह वेद के अर्थ के अनुसार नहीं चलता, इसलिए दुराचारी है। वेदों के अध्ययन से जीव और शिव को एकरूप देखना आना चाहिए।

जो मदोन्मत्त है, उसे योग्य कर्त्तव्य नहीं सूझता। जो नहीं लेना चाहिए, उसे वह ग्रहण करता है और जो अंगीकार करना चाहिए, उसका परित्याग करता है। अन्धकार में पड़ा हुआ दीवार की जगह दरवाजे की कल्पना करके अपना सिर टकराता है।

गागरभर दूध में अगर शराब की एक बूंद पड़ गई, तो फिर वह शुद्ध नहीं रहता। उसी प्रकार जिसका मन अहंकार से गंदा है, उस खल की वाणी श्रवण न करो। सुन्दरता के बत्तीस लक्षण हैं, परन्तु यदि नाक नहीं है तो सब व्यर्थ हैं। मक्खी जैसे अपने संसर्ग से अन्न को कभी नहीं पचने देती, उसी प्रकार खल की वाणी हितकर नहीं होती।

जैसे धीवर मछलियों को, शिकारी हिरनों को बिना अपराध मारते हैं, उसी प्रकार दुष्ट लोग संतों को बिना कारण सताते हैं। उन्हें चाण्डाल समझो। विष से अमृत की, अहंकार से प्रकाश की, पत्थर से हीरे की, दुष्टों से संतों की श्रेष्ठता प्रमाणित होती है।

निंदक दुर्जन खूब हों, कारण कि उनका हमपर बड़ा उपकार है। वे साबुन या मजदूरी लिये बगैर हमारे सब पापों का क्षालन करते हैं। ये हमारे मुफ्त के मजदूर हैं। वे हमारा बोझा ढोते हैं। वे हमें पार उतारकर आप

नरक में चले जाते हैं।

जो सिद्धों ने सेवन किया, वही अधम भी सेवन करता है, परन्तु फल अधिकार के अनुसार मिलता है। स्वाति नक्षत्र का जल सीप में मोती बन जाता है, कपास पर पड़ने से कपास का नाश हो जाता है,सर्प के मुंह में पड़ने से विष हो जाता है। जो जैसा करता है, वैसा फल पाता है।

चन्दन के वृक्ष के पास सर्प रहते हैं, पर सु ंध का लाभ अन्य दूरस्थ लोग लेते हैं। बोझा कोई ढोता है, लाभ कोई और ही लेता है। गाय के थन का कीड़ा (चिचड़ी) अशुद्ध रक्त का पान करता रहता है, दूध अन्य लोग ही पीते हैं। हे भगवान, सर्प और चिचड़ी जैसे जड़बुद्धियों से पत्थर होना अच्छा।

कामातुर को भय, लज्जा और विचार नहीं होता। काम साधन के सामने वह शरीर को असार तृण-तुल्य गिनता है। कृपण का लोभ केवल द्रव्य की ओर होता है, और किसीकी उसे परवाह नहीं होती। बुभुक्षित अच्छा-बुरा देखे बिना जो पाता है, वही खाता है।

शराब पीकर उन्मत्त होनेवाला नंगा नाचता है और अनुचित बातें बकता है। उसके दुस्तर कर्म उसे धृष्ट बना देते हैं; अब समझाएं किसको ? शरीर की स्थिति बड़ी बलवान होती है, पागल को धर्मनीति सुनाने से क्या फायदा ? यमदूतों के डंडे पड़ने पर होश में आ जायगा।

जिस प्रकार कौआ गंगा में स्नान करके जानवरों के जख्मों में चोंच मारता है, उसी प्रकार दुर्जन को यदि उपदेश दिया तो भी वह अपना स्वभाव नहीं छोड़ता।

विष्टा-भक्षी को अमृत अच्छा नहीं लगता। दुर्जन का सखा दुर्जन। संत लोग दुर्जन का संग भूलकर भी न करें। उसका दर्शन भी दुःखदाई है।

जिसके घर दुनिया की 'छी-छी', 'थू-थू' की ही दौलत है, उससे अपना क्या काम निकलनेवाला है ?

दृष्टि पर आवरण पड़े होने के कारण जीवों को अपना धर्म नहीं सूझ रहा है। विषय-कामना से सब लोग भ्रांत हो गए हैं, अतः सच्चा मर्म वे कैसे समझें ? देखो तो, माया उन्हें कैसे नचा रही है ?

पागल के कितने ही सुखोपचार करो, उसे उनसे क्या आनन्द आयेगा ? अन्धे के आगे दीपक-नृत्य का क्या उपयोग ? भक्ति-भाव के बिना भक्ति वैसी ही है।

करनी के बिना कथनी-पठनी व्यर्थ है। वाणी से अमृत की मिठास का वर्णन करता है और स्वतः भूखा तड़पता है।

जिसका जीना स्त्री के अधीन है, उसे देखकर मुझे बड़ी पीड़ा होती है। उस जन्तु की मैं किसकी उपमा दूं ? उसकी हालत मदारी के बन्दर की-सी है। उसकी सारी जिन्दगी गधे या कुत्ते के जीवन की तरह समझनी चाहिए।

मक्खी जिस प्रकार सुगन्धित पदार्थों को छोड़कर दुर्गंधित पदार्थों पर खुशी से बैठती है, उसी प्रकार अभागों को अधम कामों में ही रस मिलता है।

एक स्त्री ने अपने पेट पर साड़ी का डूचा बांधा, और सबसे कहने लगी, 'मुझे दिन रहे हैं।' गर्भधारण करने का सब ढोंग वह करने लगी। उसके पेट में बच्चा नहीं और स्तन में दूध की बूंद नहीं। वह स्त्री आखिरकार बिल्कुल बांझ साबित हुई और लोगों में उसकी बहुत हँसी हुई। अनुभव बिना केवल शाब्दिक ज्ञान की चर्चा करनेवाले पंडितजन भी उस स्त्री सरीखे ही हैं।

कड़ुवी तुलसी के पत्तों को चाहे जितने गुड़ से चुपड़ें, तो भी कड़ुवे-के-कड़ुवे ही रहेंगे। नीच जातिवाला हमेशा नीच ही रहता है। उसे उपदेश देना

व्यर्थ श्रम है। बिच्छू पर खूब प्रेम से हाथ फेरिये तो भी प्रेम की कद्र न करके वह डंक ही मारेगा। पत्थर को चाहे जितना उबालो, नरम न होगा। सूअर को विष्टा खाना अत्यंत प्रिय है। दुर्जनों का भी सूअर सरीखा स्वभाव होता है।

कुत्तों के भोंकने से हाथी को संताप नहीं होता, भोंकनेवाले कुत्तों को ही कष्ट होता है। जो दुष्ट लोग संत-साधुओं को सताते हैं, वे अपना मुंह अपने हाथ से काला करते हैं।

जिनमें देहाभिमान होता है उनका जब लोग सन्मान करते हैं, तब उन्हें सुख होता है। उनकी पुण्य सामग्री को मान, दंभ, आदि चोर चुरा ले जाते हैं।

नीम को शक्कर से सींचें तो भी उसका फल मीठा नहीं होनेवाला। उसी प्रकार दुर्जनों को कितना ही सदुपदेश दीजिये, सब निष्फल है।

मूर्ख तो केवल भार ढोनेवाले बैल हैं, चतुर लोग ही अन्दर की सार-वस्तु का उपभोग कर सकते हैं।

तेरे शरीर के माता-पिताओं को इस बात का ज्ञान नहीं है कि तेरा सच्चा हित किसमें है? इसलिए वे तुझे प्रापंचिक व्यवहार की शिक्षा देते हैं।

ज्ञान बोझ से जिनका कलेजा दब गया है, वे केवल शब्दों की ही माथा-पच्ची किया करते हैं और उनके स काम का अन्त ही नहीं आता। अनुभव-रहित शब्द रसहीन होते हैं।

पहले बीज बोना, फिर सींचना, फिर ईश्वर पर भरोसा रखकर जो फल मिले, उसे लेना। ऐसा न करके जो कोई फल की आशा रखकर ईश्वर की मिन्नतें करते रहते हैं, वे आखिरकार गे जायंगे और कुछ न पायंगे।

जो मनुष्य हाथ में माला लेकर, गोमुखी में हाथ डालकर, जप करने के

बहाने केवल डाढ़ी ही हिलाता रहता है और मन में दूसरे लोगों की निन्दा का विचार करता रहता है, वह केवल माला के मनके टपकाता और गोमुखी को हिलाता ही रहता है। उसे यम की सजा भोगनी ही पड़ेगी।

यह शरीर-स्थल बड़ा बाधा-पूर्ण है, फिर भी यहां जो फसल चाहें पैदा कर सकते हैं। ऐसा होते हुए भी जो कोई संकोच-वृत्ति रखकर पड़े रहें तो समझना कि वे अपनी जीव दशा से चिपटे रहना चाहते हैं।

अपने पास ही स्वरूप सुख होते हुए भी क्षुद्र लोग अज्ञान के कारण भ्रांति में पड़े रहकर दुःख भोगते हैं। दिशा-भ्रमित गलत रास्ते चल पड़ता है। मेरा यह कथन निर्णयात्मक और स्वानुभव गम्य है।

देहाभिमानवालों में धैर्य, शांति और निर्मलता नहीं होती। ऐसे जीव निर्बल ही होते हैं। वे लोग त्रिविध ताप से तपते रहते हैं।

'मैं हरि का दास हूँ' यह कहने के लिए जीभ नहीं हिलती और व्यर्थ बकवास की दुर्गंध फैलाया करती है।

अपनी प्रशंसा अपने मुंह से करना शोभा नहीं देता। फिर भी बहुतेरे अपना बड़प्पन लोगों को दिखाते फिरते हैं।

प्राणियों के प्रति ेष-बुद्धि रखना, मन में निष्ठुर भाव रखना, और अधिक वाद-विवाद करना—ये तीन अपलक्षण जिसमें हों उसे अभक्त जानना।

पैसे के लिए जो हरिकथा करता है, उससे मैं पूछता हूँ कि ऐ पापी, पेट भरने के लिए तुझे हरिकथा करने के सिवाय और कोई धंधा ही न मिला?

अपनी देह का पालन-पोषण करता जाय और मुंह से ज्ञान की बातें

छांटता जाय, ऐसे की सूरत भूल से भी दिखाई न पड़े तो अच्छा। जिसके स्वभाव में संत के लक्षण प्रकट न हुए हों, ऐसे लोग क्या औरों को उपदेश देने योग्य कहे जा सकते हैं ?

जो अपनी इंद्रियों का नियमन न करें और मुंह से नामोच्चार करें, इससे उनका क्या लाभ होगा ? कीर्त्तन करते समय जैसा मुंह से बोलें, वैसा आचरण भी करना चाहिए।

जैसा अपना जीव है, वैसा दूसरे प्राणियों का भी जीव है। पापी लोग यह बात नहीं जानते और दूसरों के गलों पर छुरी चलाते हैं। सब प्राणियों के हृदय में जीवरूप से नारायण रहते हैं। पशुओं के हृदयों में भी नारायण का वास है। हत्या करनेवाले अधोगति में ही जायंगे और दारुण दुःख भोगेंगे।

कोई अपना कुरता फाड़कर उसका कंबल बनाये, वह जैसा हास्यास्पद है, वैसा ही दूसरे की कविताओं में से कर्त्ता का नाम निकालकर उसकी जगह अपना नाम घुसेड़ देनेवाला है।

दंडित लोग अपनी विद्या को बिकाऊ माल गिनकर उसके द्वारा लोगों का केवल मनोरंजन करने की चेष्टा करेंगे तो उनको परमार्थ-संबंधी कुछ भी फल नहीं मिलेगा; परन्तु जो अपने मन से सब प्रकार का अभिमान दूर कर देते हैं और अपनी त्रुटियों की ओर ध्यान देकर नम्र बने रहते हैं, वे ही परमार्थ-फल का स्वाद चखते हैं।

जो चित्त के साथ चित्त मिल गया तो सबकुछ मिल गया समझना। ऐसा न हो तो किसीकी भी संगत करना व्यर्थ है। पानी और पत्थर का योग हो तो भी पत्थर का अंतरंग पानी से न भीगता है न नरम होता है।

बीवी-बच्चों को छोड़कर मूंड़ मुड़ाकर संन्यासी तो हुआ, परन्तु याद

अन्तःकरण से तृष्णा का क्षय न हुआ, तो संन्यासी हो जाने से क्या सधेगा ? जो तृष्णा-रहित हो गया है, वह संसार में रहते ए भी अलिप्त रह सकता ह।

जो प्रपंच का भार ढोता फिरता है, वह देव को पहचान ही नहीं सकता। जिसकी बुद्धि स्थिर न हुई वह चिन्ता में डूब-मरता है। जो तृष्णा का दास और लोभी होता है नारायण उसकी बुद्धि को स्थिर नहीं होने देता।

श्रद्धा बिना देव का मर्म समझ में ही नहीं आता। भक्ति-रहित आर धैर्य रहित लोग जैसे-के-तैसे ही रहते हैं।

: ९ :

भगवान से प्रार्थना

जो संतों के दास हों, उनके दासों का मुझे दास बना दो। हे हरि, फिर चाहे कल्प-पर्यंत मुझे गर्भवास करना पड़े, नीच कर्म करने का भी प्रसंग आया तो मैं करूंगा, मगर मुख में तुम्हारा नाम रहे। तुम्हारी सेवा में ही मेरे संकल्प समा जायें।

जिसका चित्त सदा दहकता रहता है और जिसका जी हमेशा क्षुब्ध रहता है, उसके मुझे दर्शन न हों। वह जीता भी मृतक के समान है। दुर्वचनों की गंदगी से उसकी वाणी अमंगल हो गई है। परतत्त्व और परोपकार को वह नहीं जानता।

हे देव, मैं संसार-ताप से तप गया हूं। कुटुम्ब की सेवा कर-करके भी तप गया हूं। मैंने बहुत-से जन्मों का बोझा ढोया है। सते छूटने का मुझे मर्म नहीं सूझता। मैं अन्दर और बाहर के चोरों से घिर गया हूं।

बुरे समय के चक्कर में फंसकर बलवान भी बंदी हो जाता है; कभी दाता को भी याचकों की शरण जाकर दान मांगना पड़ता है। हे भगवान्! क्या आप यह नहीं जानते? मुझे भी आपको कहना पड़ेगा?

मुझे मान नहीं चाहिए। उससे मुझे जरा भी सुख नहीं मिलता। देह के सुखोपचार से मेरा शरीर आरामतलब बनता जाता है। मिष्टान्न मुझे विष की तरह कड़ुवा लगता है। कोई मेरी प्रशंसा करता है तो मुझसे वह सुनी नहीं जाती। तू मुझे ऐसा ज्ञान दे जिससे मैं तुझको पा सकूं।

आजतक आयु व्यर्थ गई। यह बड़ी हानि हुई है। हे हरि, अब तो ेड़

कर था। बैठा हुआ क्या देखता है ? मेरा-तेरा करते-करते उम्र बीत जायेगी और आखिर मुंह में मिट्टी पड़नेवाली है। मन क्षण की भी फुरसत नहीं लेने देता; वह भव नदी में डुबाता है। विषय-रूपी लुटेरों ने मुझे लूट लिया है। हे प्रभो, मैं तुम्हारी शरण आया हूं, अब तुम मुझपर कृपा करो।

दंभ से कीर्त्ति मिलती है, पेट भरता है, मान मिलता है; मगर यह स्वहित का कोई कारण नहीं है। ज्ञान का अभिमान रखने से तेरे चरण मुझसे दूर हो जाते हैं। देह का पालन-पोषण करने से विकार तीव्र होते हैं। लोक-लाज या लोगों का लिहाज रखकर मैं अपना घात स्वयं कैसे कर लूं ? हे प्रभो, मुझे ऐसा सरल उपाय बता कि आंखें तेरे चरणारविन्द देखें।

पहले के ऋषि क्या अज्ञानी थे ? उन्होंने इस जग का त्याग किया। आठों सिद्धियां उनकी सेवा में तत्पर रहती थीं, फिर भी संसारी जनों की बुद्धि के अनुसार नहीं चले। जिन्होंने कंद, मूल, पत्ते खाकर शरीर का पोषण किया और निरन्तर वन में वास किया, वहां मौन ले, आंखें बन्द कर शांत होकर बैठे। हे अनन्त, ऐसी ही मेरे चित्त की स्थिति कर दे और लोगों को मुझसे दूर रख।

मेरी ऐसी बुद्धि में आग लग जाय कि मैं तुझमें समा जाऊं। इस ऐक्य-बुद्धि का निषेध ही अच्छा है। तू स्वामी मैं सेवक; तू ऊँचा मैं नीचा। यही कौतुक करना। इसे टूटने मत देना; कारण कि जल जल को नहीं पीता, वृक्ष अपने फल को नहीं खाता; भोक्ता अलग होता है, वही उसकी मिठास का अनुभव लेता है। हीरा कुन्दन में शोभा देता है, गहने के रूप को सोना शोभता है। गर्मी में छाया सुख देती है। बच्चों के मिलन से मां के स्तनों से दूध की धार छूटती है। एक-से-एक ही मिले तो उस समय क्या सुख होगा ? अलग रहने में ही मेरा यह चित्त हित मानता है। मैं मुक्त नहीं होऊंगा, ऐसा मैंने निश्चय कर लिया है।

तू बड़ा उदार है, कृपालु है, अनाथों का नाथ है। जो तेरी शरण में जाता

है उसकी बात सुनता है। उसका सारा बोझ तू अपने सिर पर लेकर चलता है। जो मन, वचन और काया से तुझसे अनन्य रूप हो गए हैं, उनके आवाज़ देते ही तू उनके नज़दीक आकर खड़ा हो जाता है, और उनकी हर इच्छा पूर्ण करता है। वे मार्ग पर चलते हैं तब तू उनकी संभाल करता है और कहीं कांटे-कंकर सामने आयें तो तू अपने हाथों से उन्हें दूर करता है। तेरे दासों को चिन्ता नहीं है; क्योंकि सब तरह से रक्षण करनेवाला तू उनके घर में रहता है।

हे देव, मैं कीर्त्ति, लोक, दंभ, मान लेकर क्या करूं ? तू मुझे अपने चरण दिखला। ज्ञान के बड़प्पन का भार लेकर तो मैं तेरे चरणों से अलग जा पड़ूंगा।

मेरे प्रभो, मुझे लघुता दो। चींटी को चीनी के दाने और ऐरावत रत्न को अंकुश की मार ! जिसमें बड़ापन है उसे कठिन यातनाएं भोगनी पड़ती हैं। इसलिए छोटे से भी छोटा होना अच्छा है।

हे देव, यदि आप वेद-पुरुष हैं, तो वेदों ने आपके विषय में 'नेति' शब्द का प्रयोग करके आपको भिन्न क्यों बतलाया ? हे अनन्त, तुम सर्वगत, सर्व-व्यापी होकर किस कारण मुझसे विलग रहते हो ? यज्ञ के भोक्ता आप हैं तो वह सफल क्यों नहीं होता ? उसमें कुछ कमी रह जाने से क्षोभ क्यों होता है ? सब भूतों के अन्दर अगर आप ही हैं तो यह बाहरी भेद क्यों दिखलाया ? तप, तीर्याटन, दान के आप ही मूर्त्तिमन्त स्वरूप हैं, तो इससे अभिमान क्यों होता है ? आपके दरवाज़े पर खड़ा होकर ये आवाज़ें लगा रहा हूं, क्षमा करना।

रवि का प्रकाश ही रात्रि का नाश करता है। वह न हो तो बहुत-से दीपक जलाने से रात्रि का नाश हो जायगा क्या ? उसी प्रकार सर्वश्रेष्ठ हरि ही मेरे प्राणों में वसें। इससे अनुभव में न आनेवाली बातों का अभी अनुभव होने लगेगा। राजा के साथ होने से कोई बाधा नहीं आती और विभिन्न आधका-

रियों से प्रार्थनाएं नहीं करनी पड़तीं। इससे जन्म आदि बन्धनों का नाश होगा, क्योंकि निकटवर्ती हरि पर प्रीति है।

हे प्रभो, ऐसा करो कि किसीसे बोलने का प्रसंग न आये, क्योंकि यह सब उपाधि है। एक तुम्हारे नाम बिना सब श्रम व्यर्थ है। मन के अन्य संकल्प होने से पाप-पुण्य पैदा होता है। इसलिए वाणी नारायण के ही निकट विश्रांति ले।

हे प्रभो, मेरी एक विनती सुनो। मुझे मुक्ति नहीं चाहिए; मुझे बैकुण्ठ का वास नहीं चाहिए; उससे सुख का नाश है। कीर्त्तन के समय हरिनाम-चिंतन का रस अपूर्व है। हे मेघश्याम, अपने नाम की महिमा का तुमको पता नहीं है, मुझे है; इसीलिए लेना मुझे प्रिय लगता है।

आजतक जो हुआ सो हुआ। भविष्य में मैं अच्छा मधुर भाषण करूंगा। अब मेरे अपराधों को आप मन में न लाइये। आपके नाम का चिन्तन करने में तनिक भी बाधा न पड़ने दीजिए।

हे कृपावंत, तेरी माया मेरी समझ में नहीं आती। जन्म देनेवाला कौन और जन्म लेनेवाला कौन? दाता कौन और मांगनेवाला कौन? भोक्ता कौन और भुगतानेवाला कौन? रूपवान कौन और कुरूप कौन? सब जगह केवल तू-ही-तू व्याप्त है। तेरे सिवा कुछ नहीं है।

हे भगवान, मुझे यही दो कि मेरे मुख में नाम हो और सत्संगति मिले। मुझसे बहिरंग सेवा न लेकर मेरी भावशुद्धिरूपी अन्तरंग सेवा लें।

हे दातार, अगर सारी दुनिया मिल जाय तो भी मुझे पर्याप्त नहीं लगेगी। आदि-से-अन्ततक मुझसे भूल हुई, यह प्रतीति मुझे नहीं होती।

हे देव, मुझमें और तुझमें कोई भेद नहीं है। जो कुछ है वह तू और तू-ही-तू है। मैं पूर्णरूपेण तेरे स्वरूप के अन्दर हूँ। मेरा समस्त बल तेरा ही है।

हे दातार, नर-स्तुति और कथा-विक्रय मेरे द्वारा न होने दो। पर-स्त्री और पर-धन की इच्छा मेरे मन में न आने दो। लोगों का मत्सर और संतों की निन्दा मुझसे न होने दो। देहाभिमान न होने दो। अपने चरणों की विस्मृति बार-बार न होने दो।

हे देव,यदि मैं मायाजाल में पड़ गया, तो तुमको भूल जाऊंगा, इसलिए मुझे संतान न दो। मुझे व्य और भाग्य न दो, इससे जी का उद्वेग बढ़ता है। मुझे फ़क़ीर सरीखा करो जिससे रात-दिन जीभ पर हरि का नाम रहे।

मेरे नेत्र पर-स्त्री को माता-समान न देखें तो आंखों की मुझे जरूरत नहीं है। मेरे कान यदि किसीकी भी स्तुति या निन्दा सुनने में कष्ट न मानें तो तू उन्हें बहरा कर दे। तेरा विस्मरण हो जाय तो प्राणों के रहने से क्या लाभ?

बीज के पेट में वृक्ष रहता है और वृक्ष के पेट में जैसे बीज रहता है, उसी प्रकार,हे देव, हम दोनों एक-दूसरे के अन्दर समा जाते हैं। पानी में तरंगें उत्पन्न होती हैं और फिर वे तरंगें पानी में ही समा जाती हैं। बिम्ब और प्रतिबिम्ब दोनों ही एक स्थान में लय हो जाते हैं; उसी प्रकार हे देव, आप और मैं भी एक दूसरे में लय हो जाते हैं।

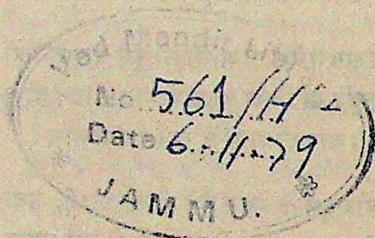
हे देव! तू कल्पवृक्ष है, मैं जो इच्छाएं करता हूं, उन्हें तू पूरी करता है।

हे देव! आपके सिवा मैं किसीका आश्रय नहीं लेनेवाला। मैंने भय, लज्जा और शंका का त्याग कर दिया है।

हे देव! वेद और शास्त्र से तुझे कोई नहीं समझ सकता, परन्तु भाव और भक्ति ारा तू निकट ही खड़ा दीखता है। शरणागत भक्तों के तू आगे-आगे चलता हुआ उन्हें सच्चा रास्ता दिखलाता है और उन्हें भटकने नहीं देता। तू एक होते हुए भी अपने आनन्द के लिए नाम रूपात्मक जगत् का विस्तार करता है और उसमें आनन्द से लीला करता है।

हे राम ! तू परमानन्द स्वरूप है, तू परम पुरुषोत्तम है, तू अच्युत है, अनन्त है, उपाधियों का हरण करनेवाला है, अविनाशी है, अलक्ष्य है, परब्रह्म है, लक्ष्मी का स्वामी है, मंगल-स्वरूप है, शुभदाता है।

हे प्रभो, तुझसे यही मांगता ँ कि तू मुझे संतों के हवाले कर दे। तू उदार हो जा और मुझे संतों के चरणों के आगे ले जाकर रख दे।



: १० :

विचार-मौक्तिक

विवेकपूर्वक भोग भोगने से त्याग होता है। अविचार से भोग का त्याग त्याग न रहकर भोग बन जाता है। जिन कर्मों से देव-मिलन में अन्तराल हो, वे पाप कर्म हैं।

टूटा हृदय नहीं जुड़ता।

पूर्वोपार्जित पाप हमारे हित में बाधक होते हैं।

अन्न मिलना, मान होना, द्रव्य मिलना—सब प्रारब्ध के अधीन हैं।

अभ्यास से असाध्य भी साध्य हो जाता है।

मुख्य धर्म है देव-चिन्तन; आदि-से-अन्ततक शूर रणांगण में अपना पराक्रम दिखाता है, भीरु अपने घर बैठा कांपता रहता है।

जब सचमुच देह में दैवी शक्ति का संचार होगा, तब क्या कमी रहेगी?

समाधान ही पूजा है।

जबतक रणभूमि नहीं दीख पड़ती, तभीतक युद्ध की बातें करना आसान है।

मिष्टान्न आदि विलास के भोगों से अपनी देह पुष्ट करना अधमों को ही भाता है। देह-रक्षण जीव के हाथ में है क्या? मालूम भी न होगा और यह क्षण-भंगुर शरीर एक दिन चला जायगा।

ब्रह्म कर्माकर्म से निर्लिप्त रहता है। सहज ब्रह्मभाव की जगह पाप-पुण्य

को स्थान नहीं है।

आशा के निरसन में ही हित है।

अनुताप से दोष निमिष-मात्र में चले जाते हैं, मगर वह अनुताप आदि-से-अन्ततक रहना चाहिए। अनुताप में नित्य स्नान करना ही प्रायश्चित्त है। अनुताप से पाप स्पर्श नहीं करता।

बड़े-छोटे का भेद-भाव दया-धर्म का नाशक है।

जान दिये बिना लाभ मुफ्त में नहीं हो जाता। रण में शूर के जान देने से दूना लाभ होता है।

आचार के बिना बोलना मानो दादी-मां की कहानी है। जबतक भगवान की पहिचान नहीं होती, तबतक सब व्यर्थ है।

शीशा अगर हीरे की तरह चमके भी तो भी वह हीरा नहीं हो जाता। उसी तरह दूसरे को देखकर, सीखकर डौल दिखाया भी तो वह सच्चा नहीं होता।

प्रभु बहुत बड़ा है, मगर भक्तों के भाव के कारण छोटा होकर उनके दिलों में रहता है। भक्ति के जोर से जैसा करायें वैसा करके भक्तों की इच्छाएं पूरी करता है। जगत का दान करनेवाला महान् देवभक्तों से तुलसी के पत्ते और पानी मांगता है।

वाणी बोलती है मगर अनुभव दुर्लभ है।

यथार्थ बात न कहकर अच्छे लगने के लिए जो औपचारिक भाषण करते हैं, वे अघोर नरक भोगते हैं।

सच्चा शूर ही मान पाता है। अन्य सैनिक केवल बोझा ढोते हैं।

जिस दिन संत घर आयें, वही हमारी दिवाली-दशहरा है।

इस भवसागर से मन ही पार उतारता है, और मन ही चौरासी लाख योनियों के बंधन में डालता है।

संतों की महिमा बहुत दुर्लभ है। हम स्वयं संत हो जायं, तभी उनके माहात्म्य का पता लग सकता है।

जीवन को हरि के अर्पण करने से संत-पद मिलता है।

सच का ल सचमुच मिलता है, उसे पाने के लिए किसीको बल-प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती।

छाया की अभिलाषा में क्या ह? जल में पड़े तारों के प्रतिबिम्ब को मोती समझकर हंस चोंच मार-मार कर जान गंवाता है।

सब आगमों (शास्त्रों) का मंथन करके निकाला आ सच्चा नवनीत भगवान है।

जो संतों को प्रिय है वह काल का भी काल है।

अभ्यास से सब कार्य सिद्ध होते ह। कोई ऐसा क न काम नहीं है जो अभ्यास से सिद्ध न हो जाय, मगर जबतक अभ्यास करने का निश्चय नहीं किया जाता, तबतक कठिन है। रस्सी की रगड़ से पत्थर तक कट जाता है। अभ्यास से वि तक को खाकर पचाया जा सकता है। मां के पेट में ौ महीने के बालक के रहने योग्य जगह शुरू में होती है क्या? लेकिन धीरे-धीरे उसके रहने योग्य जगह हो जाती ह।

जबतक विश्वम्भर की पहचान नहीं हुई, तभीतक मित्रों और भाई-बन्दों का प्रेम है। नारायण, विश्वम्भर, विश्वपिता का अनुभव होते ही जगत

मिथ्या दीखने लगेगा। सूरज जबतक उगा नहीं तबतक ही दीपक का काम है। सूर्य के प्रकाश में वह यों ही निस्तेज हो जाता है। देह-संबंध तो प्रारब्ध से होता है, अपना काम तो नारायण से ही रहता है।

लघुता अच्छी, क्योंकि उस हालत में कोई बैर नहीं धरता।

भोजन देखने, कहने और खाने में अन्तर, बड़ा अन्तर है। हीरे का मूल्य पारखी ही जानता है, मूढ़ को तो वह चकमक पत्थर सरीखा लगता है।

योगियों की संपदा त्याग और शांति है। इससे दोनों लोकों में कीर्ति और मान की प्राप्ति हो जाती है। तृष्णा से जीव 'कष्टी' होता है। सर्व कर्त्तव्य बुद्धि का त्याग करने से जीव शिवपद को भोगता है।

मन में धैर्य और क्षमा न हो तो जटा रखाना और भस्म लगाना ऐसी देह विडम्बना है, जैसे मुर्दे का शृंगार करना।

चित्त में शांति रखने से सब सुखों की प्राप्ति होती है।

सत्य बोलने के लिए हरि की प्राप्ति व्यर्थ है। एक सत्य बोलने से ही अत्यंत परोपकार होता है। कुवासना का मल छोड़ देने से मन शांत हो जाता है।

जो गुरु शिष्य से सेवा न लेकर उसे देव समान मानता है, उसीका उपदेश फलता है, शेष के उपदेश से दोष मात्र लगता है। जो देह-भाव से उदासीन है, उसीको सच्चा ब्रह्मज्ञान है।

आशा, तृष्णा, माया ये अपमान के बीज हैं, इनका नाश करने से आदमी लोकपूज्य हो जाता है।

जो जैसे ध्यावेगा, भगवान वैसे ही रूप में दर्शन देगा। जीव जो-कुछ

सेवन करता है, वह सबकुछ हरि भोगता है।

किसी प्रकार का संशय रखना ही ेष है। मन के भले-बुरे संकल्पों से ही पुण्य-पाप होता है, इसलिए उत्तम संकल्प ही शुभ है। चित्त शुद्ध करने में ही कल्याण है।

देव का कृपा करके बोलना ही प्रसाद है। इस आनन्द से आनन्द की वृद्धि करनी चाहिए।

जिसने आशा का अन्त कर दिया, देव उसीके अन्दर निवास करता है।

जिसके दिल में आशंका नहीं है, वही मुक्त है; और जिसके चित्त में लज्जा, चिन्ता, मोह है, वह बद्ध है। जो एकांत सेवन करता है, वह सुख-शांति पाता है और जो लोक में दंभी बना फिरता है, वह दुखी रहता है। दुःख से छूटकर सुख प्राप्त करने का उपाय छोटा-सा ही है, मगर यह जीव उसे न जानकर इधर-उधर भटककर दुखी होता है।

जो सब जीवों के प्रति नम्र हो गया है, उसने अनन्त परमात्मा को अपने हृदय में बन्द कर लिया है। इस प्रकार श्रीरंग को जीतने में ही सच्ची शूरता है। सबके प्रति नम्र होना ही पूर्णत्व का कारण है। पानी पतला होने से तल तक जाता है।

जो अनियमित है, उसे दुःख व कष्ट होता है।

नम्रता ही भवसागर पार करने का सारभूत साधन है। बड़प्पन का भार सिर पर लेगा तो सागर में डूब जायगा।

जो आशा से बंधा हुआ है उसे सारे जगत् का दास समझना चाहिए। जो उदासीन है, वह सब लोगों का पूज्य है। जानकार के पीछे उपाधियां लगती हैं और अनजान को पका-पकाया खाना मिलता है।

मन पर अंकुश चाहिए । नित्य नया दिन जागृति का होना चाहिए ।

जो जैसे बोले वैसे चले, वह मनुष्य अमोल है ।

जिसका रखवाला देव है, उसे कौन मारेगा ? कांटों से भरे जंगल में वह घूमे, तो भी उसके पैर में कांटा नहीं लग सकता । न उसे अग्नि जला सकती है, न पानी डुबा सकता है । विष उसके लिए अमृत हो जाता है । न वह रास्ता भूलता है न किसीके फंदे में पड़ता है । उसे कभी यम-बाधा नहीं होती । उस-पर आनेवाली गोलियों और बाणों से उसे नारायण बचाते हैं ।

देव ने जब कुछ करना ठान लिया, तो फिर वहां किसीका कुछ बस नहीं चल सकता । हरिश्चन्द्र और तारा रानी से डोम के घर पानी भरवाया । भगवान पांडवों के सहायक थे फिर भी उनका राज्य नष्ट करा दिया । इसलिए निश्चल रहकर देखिये कि सहज ही क्या-क्या होता है ।

बाहरी वेष धरने से पेट भरा जा सकता है; परन्त अन्तःकरण शुद्ध करके कमाई किये बिना परमार्थ नहीं होता ।

तीर्थयात्रा, व्रतादिक फलाशा के करने से मुक्ति नहीं मिलती । भगवान् की शरण गए बिना सब साधन व्यर्थ हैं ।

व्यभिचार के निषेधवाचक शब्द सुनकर पतिव्रता को आनन्द होता है, परन्तु उन्हींसे व्यभिचारिणी के मन को धक्का लगता है । अशुद्ध आचरण में आग लगे; जग में शुद्धपने से रहना ही भला है । धर्माचार सुनकर सदा-चारियों को आनन्द होता है, दुराचारियों को दुःख । युद्ध से शूर को उल्लास होता है, नामर्द का मानो वह मरण-प्रसंग ही होता है । आग से शुद्ध सोना अधिक उज्ज्वल होता है, हीन काला पड़ जाता है । जो घन की मार से न टूटे, वही हीरा है ।

जो स्वयं कुमार्ग में जाकर दूसरे को सुमार्ग दिखाये, उसका जो उपकार

न माने वह अद्वितीय मूर्ख है। जो स्वयं विष-सेवन करके जाने की अवस्था में दूसरे को विष-सेवन न करने का उपदेश देता है; जो स्वयं डूबता हुआ अगाध पानी की सूचना देता है, उसका उपकार मानना चाहिए। कहनेवाले के अवगुण छोड़कर गुण ग्रहण करने चाहिए।

थीर्थों में जाकर तूने क्या किया? ऊपर-ऊपर से चर्म का प्रक्षालन। जैसे कटु-वृन्दावन फल को या करेले को शक्कर में घोकने से भी उसकी कटुता नहीं जाती, उसी प्रकार तीर्थयात्रा से अन्तःकरण के मल नष्ट नहीं होते।

सेवक को स्वामी की आज्ञा का पालन प्रणोत्सर्ग होने तक करना चाहिए। स्वामी से भूल होने पर समय देखकर व वज्रभेदक उपदेश से भी उसे सुनाना चाहिए। वही सेवक कहलाने योग्य है। ऐसे ही सेवक को स्वामी का अन्न खाने का अधिकार है।

सात्त्विक लोग अल्पभाषी होते हैं और मक्कार बड़-बड़ करनेवाले।

दव को सबका पालन-पोषण करना पड़ता है, और हमें तो अपने खाने की भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती। देव को लोगों के पाप-पुण्यों का विचार करना पड़ता है, हमारे लिए सब लोग भले हैं। देव के पीछे जग का उत्पत्ति-संहार लगा हुआ है, हमें थोड़ा-बहुत भी काम नहीं करना पड़ता; देव के पीछे बड़ा काम-धंधा लगा हुआ है, हम हमेशा खाली हैं—विचार करें तो हम सब प्रकार से देव से अच्छे हैं।

भोगों को कृष्णार्पण करके भोगने से भोग त्याग स्वरूप हो जाता है। इन भोगों का भोक्ता देव है। यह निश्चित रूप से जानकर आपके अलग हो जाने से इसी देह में भगवान की प्राप्ति हो जाती है।

देव उदार है। वह थोड़े का बदला बहुत देता है।

देव अपने दासों का सेवक बनता है।

पानी सज्जन, दुर्जन सबकी तृष्णा शांत करता है। वह किसीको बुलाने नहीं जाता, न किसीको अपने गुण सुनाता है।

भिन्न-भिन्न अलंकारों में रहते हुए भी सोना एक ही है। स्वप्न की लाभ-हानि जागने पर मिथ्या हो जाती है।

कौआ मृत जानवरों का मांस खाता है। तीतर कंकर और हंस मोती खाता है। जिसकी जैसी पसंद है, जिसका जैसा भाव है, नारायण उसे वैसा ही देता है।

जहां भक्तराज रहता है, वहां स्वयं भगवान रहता है। इसमें कोई संदेह नहीं।

परमार्थ का सच्चा मर्म पांडुरंग के बिना कोई नहीं जान सकता। कोई भी कला सिखाई जा सकती है, परन्तु प्रेम किसीके भी हाथ में नहीं है।

जैसी बुद्धि, वैसी सिद्धि।

जिसके पैर में जूता तक नहीं है और राजा से बैर करता है, उसे धिक्कार है। चींटी के मुंह में हाथी का आहार डालने से उसका भार वह उठा नहीं सकेगी और मर जायगी। इसलिए अपनी शक्ति का विचार करके शूरता से तीर छोड़ना चाहिए।

पात्रापात्र का विचार किये बिना भूखे को अन्न देना चाहिए।

अपना जीव देवार्पण करने का नाम है देव-पूजा। इसके बिना सब बेकार है। जैसा बीज, वैसा फल; जैसा कारण, वैसा कार्य। जो जितना नम्र होगा, ईश्वर इतना ही उसे मान देता है।

भक्त और भगवान में भेद नहीं है। अग्नि के संसर्ग से लकड़ी अग्नि हो

जाती है।

प्राणिमात्र के प्रति हमें निर्वैर होना चाहिए। यही सर्वोत्कृष्ट साधन है। नारायण तभी अंगीकार करेगा। इसके बिना सारी बड़बड़ व्यर्थ है। चित्त के निर्मल होने पर ही सब काम होते हैं।

जबतक घी में छाछ है, तबतक वह कड़-कड़ आवाज़ करता है, शुद्ध होने पर निश्चल शांत हो जाता है।

तार्थयात्रा की अपेक्षा जहां रहते हो वहीं अधिक पुण्य किस प्रकार संपादन किया जाता है, इस रहस्य को जानना चाहिए। जिनकी एक घड़ी भी व्यर्थ नहीं जाती, ऐसे भक्तों की संगति अत्युत्तम है। जो नाम-चिन्तन करते हैं और कराते हैं, वे इस भव-नद को पार करने की नौका हैं। ऐसे परोपकारियों के चरणों पर मेरा मस्तक है।

सोना ही सत्य है, अलंकार मिथ्या है।

यदि हमारा अहंकार नष्ट हो जाय तो नारायण हमारे घर आकर रहते हैं।

सारे जग को विष्णुमय मानना वैष्णवों का धर्म है, परन्तु वे उसे नहीं जानते।

विषयों से मन परावृत हुआ कि शुद्ध आत्मज्योति दिखाई देने लगती है।

अच्छा और बुरा बुद्धि की कल्पना है, मूल आकृति में भेद नहीं है, एक पालकी उठाता है, एक उसमें बैठता है, सबको कदम-कदमपर अपने-अपने कर्म भोगने पड़ते हैं। एक के समान दूसरा नहीं है; भिन्नता प्रकृति का स्वरूप है।

उदासीन का देह ब्रह्मरूप है। उसे पुण्य-पाप नहीं लगते। उसके अन्दर अनुतापरूपी अग्नि की ज्वाला जलती रहती है। अहंभाव ने ही अन्तःकरण को गन्दा कर रखा है। जबतक आकुलता नष्ट नहीं हुई तबतक चित्त बद्धावस्था में है।

आशा छोड़कर हम बन्धन का पाश तोड़ देंगे। अन्य बातों का बोझ सिर पर लेने से निज पंथ दूर पड़ जाता है। उस जीने से क्या लाभ, जिससे ईश-प्राप्ति में बाधा पड़ जाय ?

जिसकी संगति से दुःख होता है, उससे प्रीति कैसे हो सकती है ?

बुद्धिहीन को उपदेश देना अमृत को विष बनाना है। आलसी व्यक्ति का हृदय खराब होता है, जैसे कोई शव कामनाओं से अलिप्त हो।

भगवान के चरणों में प्रीति रखने से सबकुछ प्राप्त होता है। एक-दूसरे की मदद करके हम सब अच्छा मार्ग अपनायें।

संसार असार है, भगवान ही सार है। ईश-चिन्तन के अतिरिक्त सब श्रम व्यर्थ है।

सब भूतों में श्री नारायण साक्षी रूप रहते हैं, फिर भी अवगुणी का दंडन और गुणी का पूजन होता है।

जिससे अपने चित्त को समाधान हो, ऐसा स्वहित हम स्वयं ही जानें। बहुत-से रंग-रूपों में माया फैली हुई है। उसकी इच्छा कुंठित करना ही अच्छा। विश्वम्भर को अनन्य भक्ति से चित्त समर्पण करके निःशब्द रहने से ही उसकी पूजा होती है।

आमिष की आशा से मछली कांटा निगलती है और मरती है। आशा ने ही उसके प्राण लिये। अरे देखो ! बकरा कसाई से कैसा मोह रखता है !

काम-क्रोध को शांत करके सब जीव-जन्तुओं को नमस्कार करने का नाम ही भक्ति है।

सर्वभोक्ता नारायण है, मैं नहीं, ऐसा जिसकी वाणी बोलती है, उसके सब भोग नारायण को अर्पण होते हैं। भोजन करते समय अथवा और कार्य करते समय 'सबकुछ भगवान के अर्पण हो' ऐसा कहना चाहिए। इसमें कुछ खर्च नहीं होता, परन्तु ये शब्द देव को प्रिय हैं।

सज्जनों का स्वहित इसीमें है कि लोगों के लिए कल्याणकर नीति, जैसी स्वयं को प्रतीत हो, कहें।

(परमार्थ का) अपार भंडार भरा है, कितना भी खर्च करने पर खाली नहीं होता।

जो मान चाहता है, उसे अपमान मिलता है। यह सिद्ध है कि आशा अन्त में नाश करती है। इच्छानुसार फल मिलता कहां है? फिर भी वासना ही भिखारी बनाती है। किसी ढोर का नाम राजहंस रख देने से क्या होता है?

दूध में मक्खन है, यह सब जानते हैं, परन्तु जो मंथन जानते है, वही उसे अलग कर पाते हैं। लोग जानते हैं कि काठ में अग्नि है, परन्तु घिसे बिना वह जलाने का कार्य कैसे करेगी? मलिन दर्पण को साफ किये बिना मुंह कैसे देखा जा सकता है?

जो देव हो गया है, उसे सब जगदेव स्वरूप लगता है। यहां अनुभव चाहिए, कोरा शब्द-गौरव नहीं।

छेनी से छील-छीलकर तैयार हुई देवमूर्त्ति देवपने को प्राप्त होती है, परन्तु यदि वह बीच में ही टूट-फूट जाय, तो कोई उसकी पूजा नहीं करता।

सूर्य अच्छे-बुरे सब रसों का शोषण करता तो है, परन्तु उनका कोई गुण-दोष उसे नहीं लगता। वह स्वयं सबसे अलिप्त रहता है। ब्रह्मज्ञान भी ऐसा ही होता है।

अग्नि किसीको बुलाने नहीं जाती कि मेरे पास आकर अपनी ठंड दूर कर लो। पानी भी किसीसे नहीं कहता कि 'मुझे पीओ'। भगवान भी नहीं कहते कि मेरा स्मरण करो; परन्तु जिसे अपना उद्धार करने की पड़ी होगी वह उसका स्मरण करने लगेगा।

सुखरूप जीवात्मा और सुखरूप परमात्मा, इन दोनों का तात्विक योग हो जाय तो फिर इनका संबंध तोड़े नहीं टूटता। जिसके प्रति प्रेम हो वह दूर भी हो तो पास लगता है; कारण कि प्रेम तो इतना विशाल है कि आकाश का ग्रास बना ले!

पैसेवाले को दुनिया मान देती है; परन्तु द्रव्य से उत्पन्न होनेवाला अथवा द्रव्य के ऊपर आधार रखनेवाला सौभाग्य नाशवंत है।

सब सुख के संगी हैं और उन्हें कुछ दिया जाय तभी वे काम आते हैं। दुःख के समय या अंत समय कोई काम नहीं आनेवाले। मेरे शक्तिहीन हो जाने पर नाक और आंखें बहने लगेंगी और जोरू तथा बाल-बच्चे मुझे छोड़ कर चले जायंगे। मेरी अपनी स्त्री भी कहेगी, 'मुआ, मरता भी तो नहीं है। सारा घर थूक-थूक कर खराब कर दिया।' हे प्रभो, अन्तकाल में तेरे सिवा मेरा कोई संगी नहीं है।

पंडित और कथावाचक बड़े ज्ञानी तो होते हैं, परन्तु प्रेम-भक्ति के स्वाद से वे अनजान होते हैं।

बैल की पीठ पर शक्कर की बोरियां हों तो भी उसे कड़बी ही खानी पड़ती है। कीमती चीजों की पेटियां ऊंट की पीठ पर लादी जाती हैं, पर उसे

तो भूख लगने पर कांटे ही चबाने पड़ते हैं। उसी तरह बड़ी-बड़ी आशाओं से नाना प्रकार की प्रवृत्तियों द्वारा प्राप्त की हुई दौलत यहां-की-यहीं रह जाती है और उसे कमानेवाले को उसके सगे-संबंधी बांध-जकड़कर यम के हवाले कर देते हैं।

संसार के सामने नाचनेवाले भाड़े के बंदर किस काम के ? जब यम उनके काम का हिसाब मांगेगा तो उन्हें दांत निकालकर खड़ा रहना पड़ेगा।

भूमि तो सारी पवित्र है; वासना ही अपवित्र है।

एक ही गेहूँ से विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ तैयार होते हैं और उन्हें खाने के लिए जीभ ललचाया करती है। भोग भोगने से उनके प्रति राग उत्पन्न होता है और उन्हें बार-बार भोगने का मन होता है। भोग्य पदार्थ जो अपने सामने से खिसक जायं, तो उनके प्रति नित्याकर्षण अधिक प्रबल होता जाता है। समुद्र के अन्दर एक-के-बाद-एक लहर उत्पन्न होती रहती है वैसे ही विषयों का आकर्षण है। अपने बालक को खिलाने के बाद भी उसकी मां उसे बारंबार हाथ में लेकर खिलाती है और खिलाते नहीं रुकती। छोटे बालक की बोली में जो मिठास है, उसीका ऊपरी स्वाद चखने से वह माता ऐसी विवश हो जाती है कि उसका सेवन करते-करते उसे कदापि तृप्ति नहीं होती।

एक में जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं हुई, उसमें धैर्य नहीं है।

अपने चित्त को देव के साथ बांध रक्खें तो वह उसके पास रहता है। ऐसा होने से ईश्वर के प्रकाश से अन्तःकरण हमेशा प्रकाशित रहता है। हृदय के अन्दर देव का प्रकाश होना अति उत्तम और मधुर है। ईश्वर का स्मरण करने से सारा ब्रह्माण्ड पेट में समा जाता है। ईश्वर के साथ यदि हम अपना प्रेम-संबंध अखंड रखें तो सब प्रकार के लाभ हमें आकर घर बैठे मिलते हैं।

पानी में पानी मिल जाने पर कौन कह सकता है कि यह पहले का पानी है और यह बाद का ?

देह तो मृत्यु की खुराक है। फिर भी लोग दैहिक प्रपंच का लोभ क्यों करते हैं और उसे सारवस्तु कैसे मान लेते हैं ?

संचित कर्म अपने-अपने विविध भोग भोगने के लिए यह शरीररूपी सुलभ स्थान स्वयं तैयार कर लेते हैं।

मुझे हीनता से जीना पड़े तो जीने से क्या फायदा ?

जो संकल्प-विकल्प के वशीभूत है, वह पराधीन है। काम तो सहस्रमुख राक्षस है जिसकी कभी तृप्ति नहीं होती। अतः हृदय के अन्दर उसे लय कर देने से सुख की प्राप्ति होती है।

सबसे बड़ा विघ्नकर्त्ता देहाभिमान है। इस अभिमान का जिसे स्पर्श भी नहीं हुआ वह कुलदीपक पैदा हुआ है ऐसा समझो।

संसार अपवित्र है ऐसा विचार मन में लानेवाला ही अपवित्र है। भूत-मात्र के प्रति दया रखना ही मुख्य धर्म है और यही संत-कार्य कहलाता है।

किसीको अजीर्ण हो और उसे सिर और डाढ़ी मुड़ाने की सलाह दी जाय, तो यह उसका उचित इलाज नहीं है। अपने योग्य आवश्यक कर्मों को विधिवत् करना चाहिए और वे भी उतने ही करने चाहिए जितने आवश्यक हों।

दूध-पीते बच्चे की मां जिन-जिन पदार्थों का सेवन करती है उनका सर्वोत्तम भाग दूध में आ जाने से बालक के पेट में ही जाता है। यह सब ऋणानुबन्ध का संबंध है, यह मैं सरल भाव से सबसे कहता हूँ।

चावल पक जाने पर उसे पुनः चूल्हे पर रखना व्यर्थ है। योग्य समय योग्य काम करने का नाम ही धर्म है। हर काम के लिए यथोचित समय होता है।

मन को जैसे विचारों के ग में रंगें, वैसे विचारों का रंग उसपर चढ़ जाता है और फिर उसे उसी बात की धुन लग जाती है।

भगवान के ऊपर जिसका दृढ़ विश्वास जम जाता है उसका हृदय तो अनायास ब्रह्मरस से भरपूर बन जाता है।

पत्थर के अन्दर भक्ति-भाव से देव की कल्पना करने से अपनी भावना के जोर पर भाविक भक्त तर जायंगे, परन्तु वह पत्थर तो पत्थर ही रहेगा।

कोई स्त्री अपनी अच्छी धोती फाड़ डाले और नंग-धड़ंग होकर खड़ी रहे, तो हम जानते हैं कि वह सचमुच पागल होगई है। परन्तु मन में तो पागलपन न हो और कोई पागल होने का पाखंड करे, और दूध व दही दोनों में पैर रखकर बड़ी-बड़ी बातें करें, उससे क्या होता है? मृगजल को देखने से और उसका सेवन करने से प्यास नहीं बुझती। जो अपनी कार्यसिद्धि के लिए जाते समय दूसरों की बाट जोहता नहीं खड़ा रहता, उसे ही सच्चा शूरवीर समझना।

दुराग्रह का ही नाम पाप है।

अपना मन वश में करने का उपाय यदि हाथ में आ गया तो फिर क्या दुर्लभ है?

कोई पत्थर के साथ अपना सिर फोड़े तो उसका सिर फूट जायगा, परन्तु पत्थर नरम न होगा।

अवसर का लाभ उठानेवाले में युक्ति, बल, सबकुछ चाहिए। कब

लाभ होगा और कब हानि, इसका कोई नियम नहीं है। ये अकस्मात् होते हैं। जो काम करना हो, तद्विषयक पूर्ण विचार कर लेने के बाद योजनानुसार कार्य करना चाहिए, जैसे फसल की तैयारी में।

स्वरूप का ज्ञान होने पर सबकुछ शुद्ध हो जाता है। दुराग्रह नहीं रहता। वहां हर्ष-शोक का नाश हो जाता है। स्वरूप स्थिति में आकर व्यक्ति दूसरे से निराला बोलने लगता है।

भगवान को सब कर्म अर्पण कर देने पर मन निश्चिंत हो जाता है। ऐसा न करने से व्यर्थ भ्रम उत्पन्न होता है और कर्म-बन्धन में बंध जाना पड़ता है। एक मुख्य देव की सेवा किये बिना सब निरर्थक है।

परमार्थ के मार्ग में बाधा डालनेवाले हमारे पाप-पुण्य हैं; और पाप-पुण्य का कारण देह-बुद्धि है। शूरवीर इस शिकंजे से एक तड़ाके में छूटकर मुक्त हो जाते हैं।

ब्रह्मरस का भोजन करने से प्रत्येक ग्रास पर प्रेम-वृद्धि होती है।

मन में सच्ची लगन हो तो शक्ति भी आ जाती है। मन उदार हो जाय तो किस बात का अभाव रहे?

शोक करना वृथा है। उसमें से खराब कमाई की दुर्गंध आती है।

जिसके अन्तःकरण में जो दोष होता है वही उसे पीड़ा पहुंचाता है।

राजा अन्याय से बर्तनेवालों को दण्ड दे, तो ये अधर्मी हरामखोर, लोगों को बड़े कष्ट देंगे। सन्त दूसरों को दुःख देने का दुष्कर्म न करें, परन्तु नीति का विचार करके अनीति पर चलनेवालों को दण्ड देना पड़े तो उससे पाप नहीं लगता।

अन्तःकरण के अन्दर जैसा स्वभाव होता है, वैसा बाहर प्रकट हो जाता है और उससे मनुष्य की पहचान अपने-आप हो जाती है।

निश्चिंत रहने से मन समाधान अवस्था में रहता है।

निन्दा और स्तुति दोनों मिथ्या हैं।

क्रोध करने से पुण्य का नाश हो जाता है।

युक्त आहार करना, नीति के रास्ते चलना, वैराग्य, आदि गुणों को धारण करना—ये ही तरने के मुख्य साधन हैं।

अन्तःकरण को शुद्ध करना ही मुख्य कार्य है।

क्षमा से ही सबका कल्याण होता है।

मन के संकल्पों से पाप अथवा पुण्य हुए बिना रहता ही नहीं। जो-कुछ होता है उस सबका मूल कारण मन है। मन का स्वभाव ऐसा है कि जिस रस में (विषय में) मिला दे उसके साथ मिल जाता है।

क्रोध का उदय होने पर मुंह से जो शब्द निकलते हैं, वे नरक-सरीखे होते हैं।

पश्चात्ताप-रूपी तीर्थ में स्नान करके आत्म-बोध रूपीसूर्य के दर्शन करें तभी शुद्धि होती है।

उपकार करना पुण्य है और सताना पाप। इसके अतिरिक्त और न कुछ पुण्य है, न पाप। सत्य भाषण और सत्य आचरण ही मुख्य धर्म है; मिथ्या-भाषण और मिथ्या आचरण ही पाप को बढ़ानेवाले हैं। पाप-पुण्य का यही एक मर्म है, अन्य नहीं। श्रीहरि का नाम-स्मरण ही मुख्य गति है और उससे विमख होना ही नरकवास है। संतों की संगति ही स्वर्गवास है। संतों के

प्रति उदासीन भाव रखना या उन्हें धिक्कारना ही घोर नरक है ।

देव की प्राप्ति का सच्चा मर्म यह है कि चित्त में उपरति होनी चाहिए और रोम-रोम में हरिप्रेम व्याप्त हो जाना चाहिए ।

कामधेनु के बछड़े को खाना न मिले, कल्पवृक्ष के नीचे बैठनेवाले को भूखों मरना पड़े—यह कभी हो सकता है ?

कभी कोई मां किसी वस्तु को फेंकने का ढोंग करके बगल में छिपा लेती है, वैसा ही खेल देव भी तेरे साथ लाड़ लड़ाता हुआ खेल रहा है ।

एक बार जो इस जीव को उत्तम पुरुष के सुख का अनुभव हो जाय तो फिर वह कभी दुःख का स्पर्श न होने देगा, कभी वियोग न होने देगा । देव सर्व-ऐश्वर्य-सम्पन्न है ।

स्वयं तर जाने में क्या बड़प्पन है ? दूसरे जड़बुद्धि लोगों को भी हरि-नाम प्रेमी कर देना चाहिए । पृथ्वी इतना बोझा उठाती है, इससे उसे स्वयं क्या लाभ ? गाय अपना दूध दूसरों को दे देती है, स्वयं एक बूंद भी नहीं चखती । वर्षा वृष्टि करती है उससे उसके हाथ क्या आता है ? सूर्य, चन्द्र विश्राम लिये विना प्रकाशदान करते रहते हैं । क्यों ? परोपकारार्थं । ये सब काम राम ही करते हैं ।

सत्य के बिना काव्य में रस नहीं आता । अनुभवरहित कविता लिखने का पाप कौन करे ? थोथे अनुभवहीन संकल्प लज्जास्पद हैं ।

गुरु के वचन सुनकर जो उन्हें अन्तःकरण में धारण कर सकता है, उसे सरल अन्तःकरणवाला कहना चाहिए; और जो धैर्य के अभाव से 'हाय ! मेरा क्या होगा ?' ऐसा रोना रोता फिरे, उसे हीनबुद्धि समझना ।

जो अपना जीवभाव देव के चरणों में समर्पित कर देता है और जो संसार

की उपाधि में पड़ता है, वह कृपण है।

जिसकी बुद्धि स्वाधीन हो गई है, वह जो कुछ करता है वह साधनरूप ही हो जाता है। जो दूसरे की बुद्धि का अनुसरण करके काम करता है, उसे बड़ी हानि होती है।

जो अपनी इन्द्रियों को वश में रखता है, वह सब जगह उत्तम सम्मान पाता है।

जो सारी बात का सार जान लेता है, उसे ज्ञानी समझना और जो दूसरे के साथ वादविवाद करने में अपना भूषण मानता है, उसे तुच्छ समझना।

जो गाय का और अतिथि का भाग निकालकर जीमता है, उसे शुद्ध आचरणवाला, और जो पंगत में बैठे हुए दूसरे लोगों को न देकर अकेला ही खाता है, उसे अनाचारी कहना चाहिए।

देव भावानुसार फल देता है। सब अपने-अपने भावानुसार फल भोगते हैं। संचित कर्मों के सिवा और कुछ साथ नहीं जाता।

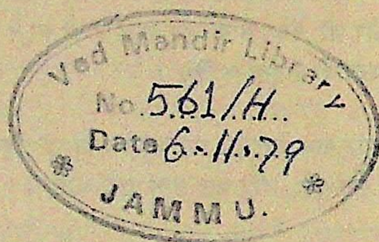
वासना को जड़ से उखाड़े बिना भवजाल नहीं टूट सकता।

'प्रारब्ध में लिखा होगा सो होगा'—ऐसा कोई न कहे। प्रयत्न किये बिना देव की प्राप्ति नहीं होती। प्रारब्धानुसार परिणाम आयगा, ऐसा विचार करके क्या कोई कांटों पर भी चलता है? अथवा जीवित सांप पकड़ने की हिम्मत रखता है? इसलिए 'आत्मोन्नति के कार्य में प्रारब्ध विघ्न नहीं कर सकता' ऐसा विचार करके हरकोई अपना हित साध सकता है।

देव को पैसे-टके की कोई गरज नहीं होती। उसे तो एकमात्र भक्ति-भाव की ही स्पृहा होती है।

सारी फजीहत का कारण यह है कि लोग जीभ और जननेन्द्रिय के गुलाम हो गए हैं ।

यदि अपना मन शुद्ध होगा,तो अपना शत्रु भी मित्र हो जायगा और बाघ, सर्प, आदि तक हमको दुःख न दे सकेंगे । मन की निर्मलता से विष भी अमृत हो जायगा । कोई हमपर प्रहार करेगा तो वह भी हमको लाभकर्त्ता होगा । घधकती अग्नि भी शीतलता प्रदायिनी हो जायगी । जो व्यक्ति मनुष्य-मात्र को अपने जीव के समान मानकर उनके ऊपर प्रेम रखता है, उसके प्रति प्राणीमात्र के मन में भी वैसा ही भाव उत्पन्न होगा । जिसे ऐसा अनुभव होने लगे उसपर नारायण की सम्पूर्ण कृपा हुई है, ऐसा समझना ।



मंडल का
आध्यात्मिक साहित्य

□□

गीता माता

भगवद्गीता

गीता की महिमा

अनासक्ति-योग

गीता बोध

गीता पदार्थ कोश

विष्णु सहस्रनाम

बुद्धवाणी

श्री अरविन्द का जीवन-दर्शन

भागवत कथा

संत सुधासार

आत्म-चिंतन

तुकाराम गाथा सार

□□□



सस्ता साहित्य मण्डल